महाकवि दण्डिकृत

दशकुमारचरितम्

(पूर्वपीठिका)

सम्पादकः—
डॉ० बाबूराम पाण्डेय
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
डी. ए. वी. कॉलिज—कानपुर



प्रकाशक—
र ...न-प्रकाशन, चौक, कानपुर

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

महाकविदण्डिकृत

दशकुमारचरितम्

(पूर्वपीठिका)

सम्पादक

डॉ० बाबूराम पाण्डेयः

अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

डी० ए० वी० कालेज, कानपुर ।

व्याख्याकार

डॉ० रामभरोसे शास्त्री

प्रवक्ता संस्कृत-विभाग,

कर्मक्षेत्र महाविद्यालय, इटावा ।

भूमिका लेखक

प्रो० राधाकान्त पाण्डेय

एम० ए०, साहित्याचार्य,

रिसर्चस्कॉलर ।



प्रकाशक—

भारतीय प्रकाशन, चौक, कानपुर

प्रकाशकः—
भारतीय प्रकाशन
चौक—कानपुर

प्रथम : संस्करण १९७५
मूल्य : ४·००

मुद्रकः—
नर्मदा प्रेस,
ए० २/७९ त्रिलोचनघाट,
वाराणसी।

निवेदन

सुरभारती के सुपुत्र, वाणी के विलास, गद्य-काव्य-कलाधर, यशःपूत महाकवि दण्डी से प्रायः सभी सुविज्ञ संस्कृत साहित्यानुरागी जन सुपरिचित हैं। गद्य-काव्यसम्राट् महाकवि बाण के अतिरिक्त अन्य कोई गद्यकाव्य-प्रणेता इनकी समता में नहीं आता। दण्डी का 'काव्यादर्श' काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है और इनका 'दशकुमारचरितम्' संस्कृत गद्यकाव्य का समुज्ज्वल हीरक है। दण्डी के काव्य के सम्बन्ध में 'दण्डिनः पदलालित्यम्' सूक्ति सुप्रसिद्ध ही है। अतः विश्वविद्यालयीय संस्कृत-विद्यार्थियों को दण्डी के रचनाकौशल से सुपरिचित कराने के उद्देश्य से 'दशकुमारचरितम्' की पूर्वपीठिका को कानपुर वि० वि० की बी० ए० की परीक्षा के पाठ्यक्रम में रखा गया है। किन्तु 'दशकुमारचरित' की अद्यावधि कोई छात्रोपयोगिनी सुबोध टीका उपलब्ध नहीं थी, जिससे छात्र परीक्षार्थ निश्चिन्तता का अनुभव कर सकें। इस अभाव को लक्षित करके मैंने अपने मेधावी सुयोग्य शिष्य श्री रामभरोसे शास्त्री, संस्कृत प्राध्यापक कर्मक्षेत्रमहाविद्यालय, इटावा से इसकी सुबोध संस्कृत-हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत करने को कहा और उन्होंने मेरे निर्देशन एवं पर्यवेक्षण में बड़े परिश्रम से इस कार्य को पूर्ण किया। ग्रन्थ की भूमिका-प्रणयन में मेरे प्रेष्ठ एवं सुयोग्य शिष्य श्री राधाकान्त पाण्डेय, संस्कृत प्राध्यापक व्यास इण्टरकालेज कालपी का महनीय सहयोग सराहनीय रहा है। वरिष्ठ शिष्य श्री भानुदत्त त्रिपाठी (मधुरेश) से भी सहयोग प्राप्त हुआ है। मैं इन सुयोग्य एवं विनीत शिष्यों के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक कामना करता हूँ। इसके अतिरिक्त जिन-जिन प्राचीन आचार्यों एवं टीकाकारों की कृतियों का ग्रन्थ में उपयोग किया है, उन सबके प्रति

कृतज्ञता के साथ आभार व्यक्त करता हुआ मैं श्रद्धावनत हूँ। अन्त में भारतीय प्रकाशन, चौक-कानपुर के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा पावन कर्तव्य है जिनके अथक परिश्रम एवं लगन से उत्तम छपाई के साथ ग्रन्थ शीघ्रता से छात्रों के समक्ष आ सका है। प्रकाशन की शीघ्रता के कारण यत्र-तत्र रही हुई अशुद्धियों और त्रुटियों के लिए हम विद्वज्जनों से क्षमा प्रार्थी हैं और अनुरोध करते हैं कि वे पुस्तक की त्रुटियों, अशुद्धियों एवं न्यूनताओं के सम्बन्ध में कृपापूर्वक हमें सूचित करते रहें, ताकि अगले संस्करण में पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

विदुषां विधेयः

बाबूराम पाण्डेय

रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग

डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

गुरुपूर्णिमा सं० २०३२

(जुलाई १९७५)

भूमिका

काव्य का स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद

मानव संवेदनशील प्राणी है। उसके आस-पास का वातावरण एवं परिस्थितियां उसके मन को प्रभावित करके भावों तथा विचारों को जन्म देती हैं, जिन्हें वह शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। सामान्य व्यक्ति किसी बात को साधारण ढंग से कह देता है, पर कवि निजवैशिष्ट्य और प्रतिभा के कारण उस कथन को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि उसका प्रभाव श्रोता या दर्शक पर तत्काल होता है। उसके शब्दचयन में चमत्कार तथा अद्भुत विलक्षणता होती है। कवि प्रजापति है, संसार को ढालने वाला है, कवि की रुचि के अनुकूल ही उसकी सृष्टि बन जाती है।

असारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते॥ अग्निपुराण ३३९।१०

काव्य शब्द का सम्बन्ध कवि शब्द से है और व्याकरण की दृष्टि से कवि का भाव या कर्म ही काव्य कहलाने का अधिकारी है। कवेरिदं (कर्म भावो वा) काव्यम्। कोष ग्रन्थों में कवि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति सर्वं सर्वतो गच्छति वा। यों तो कवि शब्द भारतीय साहित्य में बड़े ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। निरुक्तकार महर्षि यास्क ने "कवयः क्रान्तदर्शिनः" कहकर स्पष्ट क्रान्तदर्शी के रूप में स्मरण किया है। गीता में इसे एक विशेषवेत्ता के रूप में स्मरण किया गया है। 'कवयोऽप्यत्र मोहिताः' गीता ४।१६ 'संन्यासं कवयो विदुः' गीता १८।२। अमरकोषकार ने 'संख्यावान् पण्डितः कविः' कहकर पण्डित के अर्थ में रखा है। वैदिकवाङ्मय में इसे 'स्वयम्भू' के रूप में स्मरण किया है।

आचार्यों ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर कहा है। वे दोनों अभिन्न से हैं। पण्डितराज जगन्नाथ को छोड़कर प्रायः सभी आचार्य शब्द और अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं।

कृतज्ञता के साथ आभार व्यक्त करता हुआ मैं श्रद्धावनत हूँ। अन्त में भारतीय प्रकाशन, चौक-कानपुर के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा पावन कर्तव्य है जिनके अथक परिश्रम एवं लगन से उत्तम छपाई के साथ ग्रन्थ शीघ्रता से छात्रों के समक्ष आ सका है। प्रकाशन की शीघ्रता के कारण यत्र-तत्र रही हुई अशुद्धियों और त्रुटियों के लिए हम विद्वज्जनों से क्षमा प्रार्थी हैं और अनुरोध करते हैं कि वे पुस्तक की त्रुटियों, अशुद्धियों एवं न्यूनताओं के सम्बन्ध में कृपापूर्वक हमें सूचित करते रहें, ताकि अगले संस्करण में पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाया जा सके।

विदुषां विधेयः

बाबूराम पाण्डेय
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर।

गुरुपूर्णिमा सं० २०३२
(जुलाई १९७५)

भूमिका

काव्य का स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद

मानव संवेदनशील प्राणी है। उसके आस-पास का वातावरण एवं परिस्थितियां उसके मन को प्रभावित करके भावों तथा विचारों को जन्म देती हैं, जिन्हें वह शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। सामान्य व्यक्ति किसी बात को साधारण ढंग से कह देता है, पर कवि निजवैशिष्ट्य और प्रतिभा के कारण उस कथन को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि उसका प्रभाव श्रोता या दर्शक पर तत्काल होता है। उसके शब्दचयन में चमत्कार तथा अद्भुत विलक्षणता होती है। कवि प्रजापति है, संसार को ढालने वाला है, कवि की रुचि के अनुकूल ही उसकी सृष्टि बन जाती है।

असारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते॥ अग्निपुराण ३३९।१०

काव्य शब्द का सम्बन्ध कवि शब्द से है और व्याकरण की दृष्टि से कवि का भाव या कर्म ही काव्य कहलाने का अधिकारी है। कवेरिदं (कर्म भावो वा) काव्यम्। कोष ग्रन्थों में कवि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है—कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति सर्वं सर्वतो गच्छति वा। यों तो कवि शब्द भारतीय साहित्य में बड़े ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। निरुक्तकार महर्षि यास्क ने "कवयः क्रान्तदर्शिनः" कहकर स्पष्ट क्रान्तदर्शी के रूप में स्मरण किया है। गीता में इसे एक विशेषवेत्ता के रूप में स्मरण किया गया है। 'कवयोऽप्यत्र मोहिताः' गीता ४।१६ 'संन्यासं कवयो विदुः' गीता १८।२। अमरकोषकार ने 'संख्यावान् पण्डितः कविः' कहकर पण्डित के अर्थ में रखा है। वैदिकवाङ्मय में इसे 'स्वयम्भू' के रूप में स्मरण किया है।

आचार्यों ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर कहा है। वे दोनों अभिन्न से हैं। पण्डितराज जगन्नाथ को छोड़कर प्रायः सभी आचार्य शब्द और अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं।

शब्दार्थौं सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा —काव्यालङ्कार १।१६
अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम् —काव्यानुशासन
तददोषौशब्दार्थौं सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि —काव्यप्रकाश

अग्निपुराण में काव्य की परिभाषा इस प्रकार मिलती है—

संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।
काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम् ॥अग्निपुराण ३३७।६०

संक्षेप में इष्ट को प्रकट करने वाली पदावली से युक्त ऐसा वाक्य काव्य है जिसमें अलङ्कार प्रकट हो और जो दोषरहित और गुणयुक्त हो। इस परिभाषा से काव्य की वाह्य रूप-रेखा स्पष्ट हो जाती है।

भामह ने काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है—"शब्दार्थौं सहितौ काव्यम्। गद्यं पद्यं च तद् द्विधा।" इस लक्षण में शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य माना गया है। भामह का सहितौ का क्या अर्थ है इसको उन्होंने स्पष्ट नहीं किया।[1] अतः इस काव्य लक्षण से काव्य के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। यही कारण है कि परवर्ती आचार्यों ने वाह्य-स्वरूप निरूपक काव्य लक्षणों को न अपनाकर काव्य की आत्मा पर विचार किया। जयदेव और भोज का काव्य लक्षण भी बाह्य स्वरूप निरूपक ही है।

निर्दोष लक्षणवती सरीतिर्गुणगुम्फिता (भूषिता)।
सालङ्कार रसानेक वृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक् ॥ चन्द्रालोक १।७
निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसात्मकं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति ॥ सरस्वती क० १।२

भामह के जिस सहितौ पद की व्याख्या नहीं थी, उस कमी को पूरा करने का प्रयत्न दण्डी ने किया।

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्नापदावली ॥ काव्यादर्श १।१०

इष्टार्थ को प्रकट करने वाली पदावली तो शरीरमात्र है। आनन्दवर्धन का भी यही मत है—शब्दार्थ शरीरं तावत्काव्यम्।

१. 'सहितौ से तात्पर्य संभवतः परस्पर उपकारी 'परस्परोपकारिणौ चमत्कारकारिणौ इति भावः होने से है। कुछ लोग 'लोक का मङ्गल करने वाले' ऐसा अर्थ भी करते हैं 'हितेन सह इति सहितौ'।

काव्य के भेद—इन्द्रियों को प्रभावित करने के आधार पर काव्य भेद किये गये हैं—दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य में श्रवणपथ से ों के द्वारा तथा नेत्रपथ से देखे जाने वाले दृश्यों द्वारा दर्शकों के हृदय में का सञ्चार किया जाता है। श्रव्य का प्रयोग सम्भवतः उस काल से या जाता है। जब छापे के अभाव में लोगों के समक्ष काव्य-ग्रन्थ ाये जाते थे। दृश्य काव्य में रूपक तथा उपरूपक का ग्रहण होता है। अभिनेय होते हैं। अभिनेता अभिनय की अवस्था में अपने ऊपर नाटकीय के स्वरूप का आरोप कर लेता है। अतः नाटक को रूपक कहा ता है।

श्रव्यकाव्य में शब्दों द्वारा चाहे वे स्वयं पढ़े जायें अथवा अन्य के से श्रवण किये जायें, पाठकों तथा श्रोताओं के हृदय में रसका सञ्चार ता है। श्रवण योग्य रसात्मक वाक्य श्रव्यकाव्य है। इस श्रव्यकाव्य के और गद्य दो भेद हैं। पद्यात्मक काव्य वह है जिसके पद छन्दोवद्ध हुआ ते हैं। वह पद्यात्मक काव्य तीन प्रकार का होता है।

(१) महाकाव्य (२) खण्डकाव्य (३) उपकाव्य।

ाकाव्य—सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः॥

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः॥ इत्यादि

यथा—रघुवंश, कुमारसम्भव, शिशुपालवधादि—

डकाव्य—खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।

यथा—मेघदूत, ऋतुसंहार आदि।

काव्य—गीततालानुविद्धं यदुपकाव्यमितीष्यते।

यथा—गीतगोविन्द आदि उपकाव्य है।

पद्य के छः भेद होते हैं—मुक्तक, युगलक, गुणवती, प्रमद्रक, वाणाः और करहाटक। इनके लक्षण इस प्रकार हैं।

एकः श्लोको मुक्तकं स्याद् द्वाभ्यां युगलकं स्मृतम् ।
त्रिभिर्गुणवती प्रोक्ता चतुर्भिस्तु प्रभद्रकम् ।
बाणावली पञ्चभिः स्यात् षड्भिस्तु करहाटकः ।

आचार्य विश्वनाथ इसके पांच ही भेद मानते हैं—मुक्तक, युग्मक, सान्दानितक (विशेषक या तिलक), कपालक (चक्कलक) और कुलक ।

छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सान्दानितकं त्रिभिरिष्यते ।
कपालकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम् ॥

गद्य वह शब्दार्थ योजना है जो छन्दोबद्ध न हो । गद्य चार प्रकार का होता है । (१) मुक्तक (२) वृत्तगन्धि (३) उत्कलिकाप्राय और (४) चूर्णक ।

वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ॥

(१) मुक्तक वह गद्य बन्ध है जो असमस्त पदों में रचा जाता है ।

(२) वृत्तगन्धि वह गद्य प्रकार है जिसमें वृत्तों के अंश यत्र-तत्र प्रतीत हुआ करते हैं ।

(३) उत्कलिकाप्राय वह गद्य भेद है जो लम्बे-लम्बे समस्त पदों में रचा गया होता है । और

(४) चूर्णक वह गद्यरचना है जिसमें छोटे-छोटे समस्त पदों का उपनिबन्ध हुआ करता है ।

गद्य काव्य के पांच भेद होते हैं—आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा और कथालिका—

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा ।
कथालिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा ॥ अग्निपुराण ३३६।१२

दण्डी आदि आचार्यों ने गद्यकाव्य के दो ही भेद किए हैं कथा और आख्यायिका—अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः । काव्यादर्श १।२८

कथा और आख्यायिका

अग्निपुराणकार ने आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा एवं कथानिका नामक पाँच भेदों का उल्लेख किया है—

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।

कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं पञ्चधा॥ अग्निपुराण ३३६।१२

इनको देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पूर्व इस प्रकार की रचनाएं समाज में हो रही होंगी, किन्तु आज समाज में कथा और आख्यायिका नामक दो ही विधाएं प्राप्त होतीं हैं। इनका पुष्ट प्रमाण पाणिनि की अष्टाध्यायी ४।२।६० सूत्र के ऊपर लिखित "आख्यानाख्यायिकेतिहास पुराणेभ्यश्च" कात्यायन (३०० ई० पू०) के इस वार्तिक से ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त महाभाष्य में भी इनकी चर्चा उपलब्ध होती है। वहाँ पर वासवदत्ता, सुमनोत्तरा एवं भैमरथी नामक आख्यायिकाओं का उल्लेख है। किन्तु आज ये उपलब्ध नहीं है। प्रियङ्गव और यवक्रीत आख्यानों का भी उल्लेख मिलता है।

रामिल और सोमिल की शूद्रक कथा भी समाज में प्रचलित रही होगी

तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौ रामिलसौमिलो।

काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमौ॥ जल्हण।

वररुचि की चारुमती एवं श्री पालित की तरङ्गवती कथाएँ भी प्रचलित थीं। महाराज भोज ने स्वयं मनोवती और सातकर्णी हरण नामक कथाओं का उल्लेख किया है। महाकवि बाण ने बृहत्कथा और भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्य की प्रशंसा की है।

पदबन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।

भट्टार हरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते॥ हर्षचरित १२।

समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना।

हरिलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा॥ हर्षचरित १७।

यद्यपि आज ये कथाएं उपलब्ध नहीं हैं किन्तु इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि इनकी एक अविच्छिन्न परम्परा अति पुरातनकाल से समाज में चली आ रही थी। भामह एवं दण्डी के पूर्व ही इनकी सत्ता थी, जिनको आधार मानकर इन लोगों ने अपने लक्षण निर्धारित किए थे।

समाज में कथा और आख्यायिका का ही स्पष्ट रूप था। अतः इन्हीं के लक्षणों पर विचार-विमर्श हुआ। प्रथमतः अग्निपुराण के अनुसार आख्यायिका में कर्त्ता के वंश की प्रशंसा, कन्याहरण, संग्राम, नायक एवं नायिका की वियोगवर्णना, उच्छ्वासों में विभाजन, वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग एवं चूर्णक प्रकार का गद्य होना चाहिए।

कर्तृ-वंश-प्रशंसास्याद् यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरण - संग्राम - विप्रलम्भ - विपत्तयः॥
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा।
वक्त्रं चापवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता॥

अग्निपुराण ३३६।१२-१५

इसके अतिरिक्त कथा में कवि अपने वंश की प्रशंसा संक्षेप में स्वयं करता है। प्रमुख कथा के लिए गौण कथा का आश्रय लेता है। कन्याहरण, संग्राम आदि का अभाव तथा विषय-विभाजन लम्बकों में किया जाता है तथा चतुष्पदी पद्यों का प्रयोग किया जाता है।

श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्रप्रशंसति।
मुख्यार्थस्यावताराय भवेद् यत्र कथान्तरम्॥
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद् वा लम्बकैः क्वचित्।
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयात् चतुष्पदीम्॥

अग्निपुराण ३३६।१५-१७

भामह के अनुसार आख्यायिका में सुन्दर शब्दचयन, भावी घटनाओं के सूचक श्लोक, वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग, नायक के द्वारा कथानक का कथन, कन्याहरण एवं संग्राम आदि का वर्णन होना चाहिए। इसके विपरीत कथा में वक्त्र एवं अपवक्त्र छन्दों का भाव, विषय-विभाजन का उच्छ्वासों में अभाव, नायक द्वारा स्वयं कथानक का न कहा जाना, संस्कृत अथवा अपभ्रंश में इसे लिखा जाना आदि इसकी विशेषताएं हैं।

संस्कृतानाकुलश्रव्य शब्दार्थपदवृत्तिना ।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता ॥ १।२५
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् ।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च ॥ १।२६
कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदङ्किता ।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता ॥ १।२७
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि ।
संस्कृताऽसंस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक्तथा ॥ १।२८
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते ।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ॥ १।२९
(काव्यालङ्कार)

आचार्य दण्डी ने स्पष्टतया उपर्युक्त लक्षणों का विरोध किया। इनका कथन है कि ये लक्षण पूर्णरूप से किसी पर भी चरितार्थ नहीं होते हैं। केवल नाममात्र का ही भेद है।

इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल ॥ १।२४
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा ।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिन. ॥ १।२५
अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात् ।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेद-कारणम् ॥ १।२६
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम् ।
चिह्नमाख्यायिकायाश्च प्रसंगेन कथास्वपि ॥ १।२७
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः ।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासोवास्तु किं ततः ॥ १।२८
कन्याहरण संग्राम विप्रलम्भोदयादयः ।
सर्गबन्धसमा एव नैते वै शेषिका गुणाः ॥ १।२९
कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति ।
मुखमिष्टार्थसंसिद्धौ किं न स्यात् कृतात्मनाम् ॥ १।३०
काव्यादर्श १।२४—३०

अमरकोष के अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु ऐतिहासिक तथा सत्य के धरातल पर आरूढ़ होती है जब कि कथा कविकल्पना-प्रसूत होती है। यह परिभाषा हर्षचरित और कादम्बरी पर पूर्णतया चरितार्थ होती है।

आचार्य रुद्रट ने कथा और आख्यायिका में मौलिक परिवर्तन किए। उनके आधार पर कथा के प्रारम्भ में गुरु एवं देवताओं की वन्दना होनी चाहिए तथा स्वकीय-वंश-वर्णना भी अपेक्षित है। अनुप्रासयुक्त भाषा नगरादि का वर्णन भी होना चाहिए। प्रारम्भ में कथान्तर द्वारा कवि रचना करता है किन्तु वही कथान्तर आगे आने वाले कथान्तर में विलीन हो जाता है। कन्या की प्राप्ति का वर्णन एवं शृङ्गाररस का प्राधान्य रहता है। आख्यायिका का भी प्रारम्भ कथा की तरह ही होना चाहिए। प्राचीन कवियों की प्रशंसा भी होती है। उसका मुख्य उद्देश्य किसी राजा की प्रशंसा करना होता है। विषय का विभाजन उच्छ्वासों में होता है। उच्छ्वासों के प्रारम्भ में भावी सूचना देने वाले आर्या छन्दों का प्रयोग आवश्यक होता है।

रुद्रट के परवर्ती ध्वनिकार ने आख्यायिका में दीर्घ समास एवं विकट-बन्ध पर बल दिया एवं कथा में विकटबन्ध होने पर भी रसौचित्य के आधार पर वर्णना होनी चाहिए।

इस विषय में सबसे आधुनिकतम मत आचार्य विश्वनाथ का है कथा में सरस इतिवृत्त की रचना हुआ करती है। इसमें कहीं-कहीं आर्या छन्द तथा कहीं वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों में रचना होती है। इसके प्रारम्भ में नमस्कारात्मक "मङ्गल" किया जाता है और खल-निन्दा तथा सज्जन प्रशंसा सम्बन्धी पद्य भी उपन्यस्त किए जाते हैं। यथा—कादम्बरी।

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥

साहित्यदर्पण ६।३३२-३३३

आख्यायिका भी कथा के ही तुल्य गद्यकाव्य का एक प्रकार है। इसमें भी प्रायः कथा की ही विशेषताएँ रहती हैं। इसमें कवि अपने वंश का अनुकीर्तन करता है और यत्र-तत्र अन्य कवियों की भी चर्चा की जाती

है। इसमे जहाँ-तहाँ पद्यसूक्तियां भी रहती है। इसके कथांशों का व्यवच्छेद आश्वास नाम से निर्दिष्ट किया जाता है। इसमें आश्वास के प्रारम्भ में आर्या, वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों में से किसी एक के द्वारा विषयवर्णन के व्याज से वर्णनीय विषय की सूचना भी दी जाया करती है।

यथा—हर्षचरित।

आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित्॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्॥
अन्यापदेशेनाश्वास मुखे भाव्यर्थसूचनम्।

साहित्यदर्पण ६।३३४-३३६

यद्यपि आचार्य विश्वनाथ का यह अन्तिम मत है किन्तु इसे मौलिक नहीं कहा जा सकता। केवल पिष्टपेषण ही किया गया है। प्रतीत होता है कि हर्षचरित और कादम्बरी को देखकर ही उक्त लक्षणों को बनाया गया है।

दशकुमारचरित कथा है या आख्यायिका ?

इस विषय पर विचार करने से पूर्व कथा और आख्यायिका के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। कथा और आख्यायिका के स्वरूप का वर्णन "कथा और आख्यायिका" शीर्षक में किया जा चुका है। दण्डी कथा और आख्यायिका इन दोनों रूपों में कोई अन्तर नहीं मानते। दण्डी ने दशकुमारचरित में कथा अथवा आख्यायिका के किसी पूर्ववर्ती लक्षण का अनुसरण नहीं किया है। स्पष्टरूप से दशकुमारचरित को न कथा अथवा न आख्यायिका ही कहा जा सकता है। दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के प्रारम्भ में विष्णु की स्तुतिपरक एक पद्य प्राप्त होता है। दशकुमारचरित में कवि ने अपने वंश की प्रशंसा नहीं की है और न अपना वंश परिचय ही दिया है। कादम्बरी कथा के सदृश खल-निन्दा तथा सज्जन प्रशंसा भी प्राप्त नहीं होती। कन्याहरण, संग्राम, नायक एवं नायिका की वियोग-वर्णना, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि का वर्णन मिलता है जो आख्यायिका की विशेषताएं हैं। दशकुमारचरित की समग्र कहानियां नायक द्वारा

ही नहीं कहीं गई है। अनेक राजकुमार अपनी कहानी कहते हैं इस आधार पर इसे आख्यायिका नहीं कहा जा सकता। आख्यायिका में अध्यायों के विभाजन का नाम उच्छ्वास होता है। दण्डी ने अपने दशकुमारचरित में विभाजन का नाम उच्छ्वास ही दिया है। आख्यायिका में आर्या वक्त्र और अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिए पर दशकुमारचरित में इन छन्दों का सर्वथा अभाव है। रुद्रट के अनुसार आख्यायिका में प्राचीन कवियों की प्रशंसा आवश्यक है पर दशकुमारचरित में पूर्ववर्ती किसी कवि का वर्णन नहीं मिलता। दशकुमारचरित में कुछ लक्षण आख्यायिका के तथा कुछ कथा के प्राप्त होते हैं। वस्तुतः दशकुमारचरित तो गद्यकाव्य ही कहा जा सकता है। गद्यकाव्य के किसी भेद, कथा या आख्यायिका का लक्षण पूर्णरूप से घटित नहीं किया जा सकता। काव्यादर्श में दण्डी कथा और आख्यायिका दोनों विधाओं की अलग-अलग प्रतिष्ठा के विरुद्ध प्रतीत होते हैं। उन्होंने कथा और आख्यायिका का पृथक्-पृथक् लक्षण न देकर दोनों में भेद स्थापित करने वालों को उत्तर दिया है और उस अभेद स्थापना में ही उनके प्रमुख लक्षण निरूपित हो गए।

दण्डी के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि आख्यायिका का वक्ता उसका नायक ही हो दूसरा पुरुष भी उसका वक्ता हो सकता है। आख्यायिका की भांति कथा में भी वक्त्र और अपरवक्त्र का भी प्रयोग हो सकता है। इसी प्रकार कथा के परिच्छेद लम्भ, लुम्बक, नाम से रखे जाते हैं और आख्यायिका के उच्छ्वास नाम से लेकिन परिच्छेद की संज्ञा लम्भ हो या उच्छ्वास इससे दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। केवल नाम भेद है। कुछ विद्वान् कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, कुमारोदय आदि के वर्णनों को केवल आख्यायिका का ही वैशिष्ट्य स्वीकार करते हैं कथा का नहीं। पर ये वैशिष्ट्य आख्यायिका के लिए रूढ़ नहीं है। प्रबन्धगत सामान्य धर्म होने के कारण कथा में भी उनका प्रयोग हो सकता है।

दण्डी के इन आदर्शों को ध्यान में रखने के बाद यदि हम विचार करें कि दशकुमारचरित किस उपभेद की ओर झुका है तो कहा जा सकता है कि दशकुमारचरित आख्यायिका के वैशिष्ट्य से अधिक विभूषित होने पर भी वह कथा के अधिक समीप है। मुख्यतः आख्यायिका की कथा-

वस्तु ऐतिहासिक तथा सत्य के धरातल पर आरूढ़ होती है। जब कि कथा कविकल्पना प्रसूत होती है। दशकुमारचरित की कथा पूर्णतः कवि-कल्पना-प्रसूत है।

अन्त में कह सकते हैं कि दशकुमारचरित कथा और आख्यायिका की संकुचित सीमाओं में बद्ध न होने पर भी, कथानक के कवि-कल्पित होने के कारण कथा के अधिक समीप है।

संस्कृत-गद्य का उद्गम और विकास

गद्य की सत्ता प्राचीनतर तथा महनीय है। जब हम इसके लिखित रूप की उत्पत्ति की मीमांसा करते हैं तो हमें वैदिक ग्रन्थों का अनुशीलन अत्यावश्यक हो जाता है क्योंकि इन ग्रन्थों की सत्ता सन्देह से अस्पृष्ट और प्राचीनतम है।

विश्व में प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद स्वीकार किया जाता है यद्यपि इसमें गद्य का नितान्त अभाव है, परन्तु फिर भी जर्मन मनीषी ओल्डेनवर्ग ने इसकी उत्पत्ति ऋग्वेद से ही सिद्ध की है। उनकी धारणा के अनुसार ऋग्वेद के यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी प्रभृति संवादात्मक सूक्तों में गद्य का सम्मिश्रण रहा होगा, किन्तु शनैःशनैः कालान्तर स्मरणशक्ति के दुर्बल होने के कारण गद्यांश लुप्त हो गया होगा क्योंकि पद्य की अपेक्षा गद्य की स्थिरता अल्पकालिक होती है। उन्होंने अपनी इस धारणा को पुष्ट करने के लिए आयरिश स्कन्डेनेवियन काव्यों से उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं, किन्तु उनका यह मत विद्वानों में स्थान नहीं पा सका। यह केवल बौद्धिक अनुसंधान की एक दिशा मात्र रह गई।

गद्य का प्राचीनतम रूप हमें यजुर्वेद में प्राप्त होता है। गद्य के कारण ही इसका नाम यजुर्वेद पड़ा।[1] इसकी काठक एवं तैत्तिरीय संहिताओं में गद्य का प्रारम्भिक रूप पाया जाता है। इस सम्पूर्ण गद्य साहित्य को चार भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) गद्य का प्रारम्भिक युग—(प्रारम्भ से लेकर ईसा तक)

---

१. ऋग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था; गीतिषु साम; शेषे यजुः शब्दः मीमांसा दर्शन १।३३, ३४, ३५. महर्षि जैमिनि।

यह युग गद्य की शैशवावस्था का था, जिसमें गद्य का रूप अति सरल एवं समासविहीन था। इस काल में वेदों, संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं वेदाङ्गों में उपलब्ध गद्य आता है। अथर्ववेद में भी गद्य के दर्शन होते हैं।

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्। स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत्। तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्। तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत्, तज्ज्येष्ठमभवत्, तद् ब्रह्माभवत्, तत् तपोऽभवत्, तत्सत्यमभवत्, तेन प्रजायत। (अथर्ववेद १५ काण्ड १ सूक्त)।

संहिताओं का गद्य मन्त्रों का विनियोग तथा याज्ञिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस कारण से यह गद्यांश अनलङ्कृत तथा असमस्त है एवं उसमें संलाप–शैली का प्रयोग किया गया है। कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। स्वाभाविकता एवं प्रवाहमयी शैली सर्वत्र परिलक्षित होती है।

ब्राह्मणग्रन्थों एवं उपनिषदों का गद्य भी सरल तथा प्रवाहमय है क्योंकि इसके द्वारा विभिन्न प्रकार की व्याख्याएं प्रस्तुत की गई हैं। अतः समझाने की दृष्टि से गद्य का सरल होना आवश्यक है। महर्षि यास्क प्रणीत निरुक्त का गद्य भी सरल अकृत्रिम शैली में है। यत्र-तत्र कृत्रिमता भी मिलती है। ब्राह्मणग्रन्थों की भाषा प्राचीन है और वह सर्वत्र पाणिनि के नियमों का अनुसरण करती नहीं दिखलाई पड़ती : ह, वै, उ, खलु आदि अव्ययों का प्रयोग विशेष मिलता है उनकी शैली सरल और शक्तिशाली है। आरण्यक भी गद्य में विरचित हैं उनकी भाषा लौकिक साहित्य के अधिक निकट है। क्रमशः वेद, ब्राह्मण एवं उपनिषदों से एक-एक उदाहरण दिया जाता है जिनमें गद्य की सरल और समासहीन शैली मिलती है।

होता यक्षत सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नून घासे अज्राणां यवसप्रथमाना सुमत्·········सरस्वती जुषता हवि र्होतर्यज। यजुर्वेद २१।४४

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। अग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति। दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति। ऐतरेय ब्राह्मण १।१

यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद् विजानाति तद्भूमा। अथ यत्रान्यत् पश्यति अन्यच्छृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पम्। यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। छान्दोग्योपनिषद् ७।२४

(२) गद्य का पूर्व-मध्य-युग—(ईसा की प्रथम शती से ५ वीं शती तक)—

यह गद्य का वयः सन्धि का काल है, जिसमें वैदिक एवं लौकिक संस्कृत गद्य का मेल है। इस काल को भी तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) पौराणिक गद्य—पौराणिकगद्य के अन्तर्गत महाभारत, श्रीमद्-भागवत एवं विष्णुपुराण का गद्य आता है। महाभारत का गद्य सरल तथा स्वाभाविक है। यत्र-तत्र आलङ्कारिक भाषा का भी प्रयोग हुआ है। श्रीमद्-भागवत एवं विष्णुपुराण का गद्य लौकिक एवं वैदिक गद्य के मिश्रण का निदर्शन है। इनका गद्य अलङ्कार तथा प्रसादगुण युक्त है। कहीं-कहीं साहित्यिक गद्य के भी दर्शन होते हैं।

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषयम-भिसमीक्षमाणयोरात्मसमस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत्—श्रीमद्भागवतम् ५।१।

(ख) शिलालेखीय गद्य—इस प्रकार का गद्य शिलालेखों तथा प्रशस्तियों में प्राप्त होता है। इस दृष्टि से रुद्रदामन् का गिरिनार का शिला-लेख तथा हरिषेणकृत प्रयाग प्रशस्ति विशेषतः उल्लेखनीय है। इनका गद्य अत्यन्त प्रौढ़, आलङ्कारिक, मञ्जुल तथा ओजगुणसम्पन्न है। कृत्रिमता का बाहुल्य है। इनकी छाया परवर्ती गद्यसाहित्य पर देखी जा सकती है।

प्रमाणामानोन्मान स्वरगतिवर्णसारसत्वादिभिः परमलक्षणव्यञ्जनैरुपे-तैकान्तमूर्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमा-ल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्—

(रुद्रदामन् का गिरिनारलेख १५० ई०)

(ग) शास्त्रीय गद्य—शास्त्रीय गद्य के अन्तर्गत व्याकरणग्रन्थों, दर्शनग्रन्थों, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र एवं कथाओं का गद्य आता है। व्याकरण में हमें प्रथमतः महाभाष्य में गद्य प्राप्त होता है, जिसकी शैली

अति सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। इसी कारण से भाष्य जैसा दुरूह ग्रन्थ भी सरल बन पड़ा है। इसी में वासवदत्ता, भैमरथी और सुमनोत्तरा नामक आख्यायिकाओं का भी उल्लेख है। ३०० ई० पू० कात्यायन ने भी आख्यायिका का उल्लेख किया है। महाराज भोज के शृङ्गारप्रकाश में मनोवती एवं सातकर्णीहरण कथाओं का उल्लेख है। जल्हण ने रामिल और सोमिल कृत शूद्रक कथा का सङ्केत किया है। परन्तु इन कथाओं के अप्राप्य होने के कारण इनके गद्य का अनुमान ही किया जा सकता है। महाकवि बाण ने हर्षचरित में भट्टार हरिश्चन्द्र के गद्य की प्रशंसा की है।

दर्शन ग्रन्थों पर लिखे गए भाष्यों का गद्य कहीं-कहीं दुरुह भी हो गया है यद्यपि उसको सरल बनाने का प्रयास किया गया है। मीमांसा के सूत्रों पर शबरस्वामी का भाष्य, वात्स्यायन द्वारा न्यायसूत्रों पर भाष्य, आचार्य शङ्कर द्वारा वेदान्तसूत्रों पर भाष्य, योग सूत्रों पर व्यासभाष्य एवं जयन्त भट्ट द्वारा लिखित "न्यायमञ्जरी" नामक ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

एवं हि दृश्यते लोके मृत्कयाचिदाकृत्या युक्तो पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य घटिकाः क्रियन्ते, घटिकाकृतिमुपमृद्य कुण्डिकाः क्रियन्ते। तथा— सुवर्णं कयाचिदाकृत्या युक्तं पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचकाः क्रियन्ते, रुचकाकृतिमुपमृद्यकटकाः क्रियन्ते, कटिकाकृतिमुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते। महाभाष्य पस्पशाह्निक पृ०४९।

इच्छयात्मानमुपलभामहे! कथमिति? उपलब्ध पूर्वे ह्यभिप्रेते भवतीच्छा। यथा मेरुमुत्तरेण यान्यस्मज्जातीयैरनुलब्ध पूर्वाणि स्वादूनि वृक्ष फलानि न तानि प्रत्यस्माकमिच्छा भवति। मीमांसा दर्शन १।१।१५ शबरस्वामी कृत-भाष्य।

अत्राह—यदि जगदिदयनभिव्यक्तनाम रूपं बीजात्मकं प्रागवस्थमव्यक्तशब्दार्हम्युपगम्येत्, तदात्मना च शरीरस्याप्यव्यक्तशब्दार्हत्वं प्रतिज्ञायेत, स एव तर्हि प्रधानकारणवाद एव सत्यापद्येत्। ब्रह्मसूत्र १।३—आचार्य शङ्कर कृत भाष्य।

(३) गद्य का उत्तर-मध्यकाल—(६ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक)

यह काल गद्य के विकास की प्रौढ़ावस्था थी। इस काल में गद्य का चरम विकास हुआ। महाकवि सुबन्धु से लेकर १८ वीं शताब्दी तक के गद्य प्रणेताओं ने अपनी प्रौढ़ प्रतिभा का परिचय दिया। प्रौढ़ गद्य के आदि प्रणेता महाकवि सुबन्धु हैं जिनकी "वासवदत्ता" नामक प्रणयकथा अपनी श्लेषमयी रचना के लिए आज भी प्रसिद्ध है। उनकी कथा में "प्रत्यक्षर-श्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्" की बात चरितार्थ होती है। इनका गद्य अलङ्कृत, संश्लिष्ट एवं समास-बहुल है। यह गौड़ीरीति में लिखी गई है। सुबन्धु के पश्चात् आचार्य दण्डी ने अपनी सरस और ललित पद बन्धों से युक्त शैली का परिचय दिया। उनका दशकुमारचरित गद्य के पदलालित्य का चरम निदर्शन है। इनके गद्य में व्यङ्ग, हास्य एवं प्रेम का सम्मिश्रण है। उनके गद्य को पढ़ते हुए पाठक ऊबता नहीं। वह तादात्म्य के साथ पढ़ता चला जाता है।

इसके पश्चात् कवि-कुञ्जरों के मद को चूर्ण करने वाले काव्य-कानन-पञ्चानन महाकवि बाण का काल आता है। महाकवि बाण ने अपनी नव-नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा के द्वारा नूतन उद्भावनाएँ करके गद्य को पाञ्चालीरीति में प्रस्तुत किया। उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा ने गौड़ी और वैदर्भी का सम्मिश्रण स्थापित किया। कवि की भाषा विषय के अनुरूप है। कलापक्ष एवं भावपक्ष का समन्वय कादम्बरी कथा में उपलब्ध होता है। बाण के गद्य का प्राथमिक रूप हर्षचरित आख्यायिका में एवं चरम विकास कादम्बरी में प्राप्त होता है। कवि के पास अपार शब्द भण्डार एवं अथाह ज्ञान है। सुबन्धु और दण्डी का सुन्दर समन्वय बाण की कथा में प्राप्त होता है। उनके गद्य में प्रायः सर्वत्र सरसता, कोमलता एवं प्राञ्जलता प्राप्त होती है।

इस लेखकत्रयी के अनन्तर चम्पूकाव्यों का गद्य आता है। इन काव्यों में गद्य-पद्य मयी द्विकूला सरिता समानरूप से प्रवाहित होती रही है। इनका गद्य भी बड़ा ही प्राञ्जल एवं कलापक्ष का समर्थन करता है। इस दृष्टि से त्रिविक्रमभट्ट का "नलचम्पू" सोमदेवसूरि का यशस्तिलकचम्पू' भोज का "रामायणचम्पू' अनन्तभट्ट का 'भारतचम्पूः कवि कर्णपूर का

'आनन्दवृन्दावनचम्पू' और वेंकटाध्वरि का 'विश्वगुणादर्शचम्पू' विशेष उल्लेखनीय है। इन कृतियों के अतिरिक्त धनपाल की "तिलकमञ्जरी" एवं ओड़यदेव वादीभ सिंह की गद्यचिन्तामणि सफल रचनाएँ हैं। तिलक-मञ्जरी में कादम्बरी का अनुकरण किया गया है। इसमें हरिवाहन, समरकेतु एवं तिलकमञ्जरी की प्रणयकथा वर्णित है। गद्यचिन्तामणि में भी कादम्बरी का अनुकरण है और जीवन्धर नामक एक राजकुमार की कथा वर्णित है। कादम्बरी के शुकनासोपदेश की जीवन्धर के उपदेश में स्पष्ट छाप है। इन कवियों ने विशेष रीति पर बल नहीं दिया किन्तु अनुकरण की प्रवृत्ति अवश्य प्रकट की। अलङ्कृत गद्य होने पर भी मौलिकता के अभाव में वह महत्त्व को प्राप्त न कर सका।

११ वी शताब्दीमें सोड्ढल की "उदय सुन्दरी कथा" १५ वी शताब्दी में वामनभट्ट द्वारा "वेमभू पालचरित" एवं १६५० ई० में मुद्राराक्षस नाटक के आधार पर अनन्तशर्मा ने "मुद्राराक्षस पूर्व संकथानक" नामक एक गद्य रचनाप्रस्तुत की। इन रचनाओं में भी कोई नूतनता नहीं आई किन्तु अनुकरण की ही प्रवृत्ति लक्षित होती है।

४ आधुनिक काल—(१९ वीं शताब्दी से·········)

यह काल भी अपनी रचनाओं के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस काल की सर्वोत्तम कृति अम्बिकादत्त व्यास का "शिवराजविजय" नामक ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें कवि ने ऐतिहासिकता के साथ ही साथ कल्पना का भी प्रलेप चढ़ाया है। व्यास जी ने अपनी प्रतिभा के द्वारा प्राचीन और अर्वाचीन शैली का समन्वय किया है। इसमें प्रसादादि गुण, हास्य और व्यङ्ग्य का पुट विषय के अनुकूल है। कथोप-कथन में लघु वाक्यों का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है।

यों तो व्यास जी के पश्चात् भी गद्य काव्य की रचना हुई, किन्तु उन जैसी भाषा कोई नहीं ला सका। पण्डित हृषीकेश द्वारा प्रणीत "प्रबन्धमञ्जरी" एक निबन्ध संग्रह व्यङ्ग्य शैली में प्रकाशित हुआ। इन्होंने इस विधा की ओर उन्मुख होकर साहित्य को एक नया योगदान दिया। इनकी शैली महाकवि बाण से प्रभावित है। इसके अतिरिक्त

पण्डिता क्षमा राव की लघु कहानियां "कथामुक्तावली" के नाम से संकलित हैं। इनकी भाषा प्रवाहमयी, प्राञ्जल तथा आकर्षक है। एक अन्य कथा-संग्रह "कथाकल्लोलिनी" के नाम से वाराणसी से प्रकाशित हुआ जिसमें द्विजेन्द्रनाथ मिश्र "निर्गुण" एवं रामकुवेर मालवीय आदि विद्वानों के द्वारा लिखित आधुनिक कहानियां सरल शैली में लिखी गई है। इसके अतिरिक्त श्री नारायण शास्त्री की "विद्वच्चरितपञ्चकम्" एवं म० म० पं० रामावतार शर्मा की "भारतानुवर्णनम्" विशेष उल्लेखनीय हैं। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आजकल बढ़ रहा है—जिसमें गाण्डीवम्, दिव्यज्योति, भारतोदय, सरस्वतीसुषमा, साकेतम्, संस्कृतभवितव्यम्, सूर्योदय आदि का योगदान उल्लेखनीय है।

संस्कृत-गद्य-काव्य की विशेषताएं

मानव एक संवेदनशील प्राणी है। उसकी संवेदना की अभिव्यक्ति भाषा है। वह अपने विचार गद्य एवं पद्य के द्विविधरूपों में ही व्यक्त करता है। इसी कारण अनादिकाल से गद्य-पद्य रूपी द्विकूला-साहित्य-सरिता अपने कल-कल-निनाद से जनमानस को आप्लावित करती रही है। गद्य मानव की सहज अभिव्यक्ति है तथा कवियों का निकषोपल है। यदि गद्य में प्रौढ़ मस्तिष्क का योग है तो पद्य में सुकोमल हृदय का।

निःसन्देह मानव की नैसर्गिक रुचि पद्य की ओर अधिक है। यथार्थतः स्वाभाविक रुचि के साथ ही साथ युगीन विचारधारा और बौद्धिक क्षीणता भी कुछ अंशों में उत्तरदायी है। जहाँ साहित्यप्रणेता पद्य का आश्रय लेकर अपनी दुर्बलताओं को संवरण करते थे, वहाँ पर कतिपय मनीषी गद्य के निर्मुक्त क्षेत्र में निर्द्वन्द्व विचरण करके अपना बौद्धिक परिचय भी देते थे। इसी के परिणामस्वरूप गद्य कवियों की निकष बन गयी और "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" विद्वानों के वैदुष्य का मापदण्ड करने लगी।

यद्यपि कतिपय विद्वानों ने ही गद्य की सर्जना की, तथापि उतनी सर्जना में ही उनकी प्रतिभा का चरम प्रदर्शन प्राप्त होता है। इस गद्य रचना को देखकर कवियों की सामान्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है और वे प्रवृत्तियां स्वयं आदर्श रूप में परवर्ती कलाकारों के लिए उपजीव्य बन

गयीं। इन्हें ही दूसरे शब्दों में गद्य की विशेषताएं भी कह सकते हैं। इसी कारण भिन्न-भिन्न कवियों की पृथक्-पृथक् विशेषताएं भी प्रकट हुईं। यदि सुबन्धु श्लेष के सम्राट् हैं तो दण्डी पद-लालित्य के। जबकि काव्यकानन के पञ्चानन तथा पाञ्चालीरीति के नायक महाकवि बाण में दोनों का समत्व योग है। गद्य काव्य की विशेषताओं को निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

(क) समासाधिक्य—संस्कृत गद्य की यह प्रथम विशेषता है कि इसमें कविगण समासों का प्रयोग प्रचुरता से करते हैं, जिसमें दीर्घकाय वाक्यों के लिए लघुता का स्वरूप आता है। यदि पात्रों में कथोपकथन होता है तो समास का प्रयोग नहीं किया जाता है। यदि किसी विषय की वर्णना की जा रही है या प्रकृति की भयङ्करता का वर्णन किया जा रहा है तो समास-बाहुल्य होना आवश्यक हो जाता है। अतः समासों का योगदान गद्य के प्रति अपना विशेष महत्त्व रखता है। इस दृष्टि से सुबन्धु का निम्न गद्य स्पृहणीय है। कवि विन्ध्यपर्वत का वर्णन कर रहा है।

कन्दरान्तराललतागृहसुप्तप्रबुद्धविद्याधरमिथुनगीताकर्णनसुखितचमरीगणमारणोत्सुकशबरकुलसम्बाधकचक्रतटः, कटकतटगतकरिकराकृष्टभग्नहरिचन्दनस्यन्दमानरसामोदहरगन्धवाहशिशिरितशिलातलः, सुदूरपतनभग्न तालफलरसार्द्रकरतलास्वादनोत्सुकशाखामृगकदम्बकः। वासवदत्ता पृष्ठ ६३

(ख) ओजः प्राधान्य—'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्" दण्डी की इस उक्ति ने ओज को गद्य का प्राण बताया। यथार्थतः यह लक्षण दण्डी से पूर्ववर्ती शिलालेखों पर भी चरितार्थ होता है। रुद्रदामन् के शिलालेख और हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति में इस प्रकार की गद्य शैली के दर्शन प्राप्त होते हैं। यों तो विषय के अनुरूप प्रसाद और माधुर्य गुण भी प्राप्त होता है। शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार आख्यायिका में शृङ्गार में भी कोमल वर्णों से युक्त रचना नहीं होती है।[1] कहीं-कहीं पर वक्ता एवं वाच्य के अनुसार रचना को मोड़ देना पड़ता है। ओज की दृष्टि से सुबन्धु का निम्न गद्य द्रष्टव्य है।

---

(१) तथाहि आख्यायिकायां शृङ्गारेऽपि न मसृणवर्णादयः।
काव्यप्रकाश ८

अत्यूहदात्यूहकुहरितभरितनदीतटानिकुञ्जपुञ्जेन, पुञ्जितताकुण्ठकण्ठ-कलकण्ठाध्यासितसहकारपल्लवेन चपलकुलायकुक्कुटकुटुम्बाध्युषितोत्कटानेक-विटपेन, मदजलसेचकितगण्डकाषमुचुकुन्दकाण्डकण्डूयमाननि:शङ्ककरिकरटवि-कटकण्डूतिना, कतिपय दिवस प्रसूतकुक्कुटीकुटीकृत कुटजकोटरेण। वासव-दत्ता २३१ पृष्ठ।

(ग) अर्थगाम्भीर्य—संस्कृतवाङ्मय में गम्भीर-विषयों का विवेचन गद्य के ही माध्यम से किया गया है। दार्शनिक गद्य बड़ा ही अर्थपूर्ण तथा प्रौढ़ है। अत: प्रणेताओं ने भी शास्त्रीय ग्रन्थियां सुलझाने के लिए प्रौढ़-शैली का आश्रय लिया और एक नूतन "अवच्छेदकावच्छिन्न" प्रणाली को जन्म दिया। यों तो सरस और सुकोमलभाव अपने विषय के अनुसार उपस्थापित किए गए हैं तथापि अर्थगाम्भीर्य सर्वत्र परिलक्षित होता है। कादम्बरी का शुकनासोपदेश इस दृष्टि से अच्छा बन पड़ा है। इस अर्थ-गाम्भीर्य को प्रदर्शित करने के लिए कवियों ने श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का आश्रय लिया है।

(घ) अलङ्कारबाहुल्य—संसार की किसी भी भाषा में संस्कृत जैसा अलङ्कार-वैविध्य नहीं प्राप्त होता है लक्षण-शास्त्रियों ने इनकी संख्या सौ से ऊपर निर्धारित की है तथापि कतिपय अलङ्कार अपनी सरसता और विशेषता के लिए समान रूप से कवियों द्वारा ग्राह्य हैं। विशेषत: गद्य के स्वच्छन्द क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए उनका प्रयोग किया है। वे हैं—उपमा, रूपक, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या, श्लेष, अनुप्रास और यमक आदि। उपर्युक्त अलङ्कारों का संस्कृत गद्य में विशेष प्रयोग हुआ है। इन अलङ्कारों ने स्वर्ण में सुगन्ध का कार्य किया है। विभिन्न अलङ्कारों के प्रयोग से गद्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है. अत: अलङ्कार बाहुल्य गद्य का भूषण है।

(ङ) पदलालित्य—गद्य निर्माताओं ने ललित-पद-बन्ध के द्वारा भाषा में माधुर्य तथा सौन्दर्य को बढ़ाया है। कोमल-कान्त-पदावली को पढ़कर साधारण पाठक का भी हृदय मन्त्रमुग्ध हो जाता है तथा कवि की प्रतिभा पर आश्चर्य प्रकट करने लगता है। यों तो विभिन्न कवियों ने

अपने विषय के अनुसार सुकुमार पद-बन्ध का सृजन किया है। किन्तु महाकवि दण्डी इस विषय के आचार्य हैं, यथा—

अनवरतयागदक्षिणरक्षित शिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुर भूसुरनिकरः, विरचितारातिसन्तापेनप्रतापेन सतततुलितमध्य हंसः, राजहंसो नाम घनदर्प-कन्दर्प सौन्दर्यं सौदर्यंहृद्य निरवद्यरूपोभूपो बभूव। —दशकुमारचरित

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'

संस्कृत साहित्य में विविधि प्रकार के अनेक काव्य है किन्तु गद्य-काव्यों की कमी, उनके रचना-काठिन्य और काव्य-वैशिष्ट्य को प्रकट करती है। संस्कृत काव्यों में गद्य की न्यूनता इसलिये है कि पद्य की अपेक्षा गद्य-रचना में दुरूहता है। श्लोक के एक अंश में भी चमत्कार की विशेषता आ जाने से सम्पूर्ण श्लोक प्रशंसा-भाजन बन जाता है किन्तु गद्य में सौन्दर्य का आधान सुलभ नहीं है। पद्य रचना में शब्द-योजना, गीतिमाधुर्य तथा छन्द-विधान के अनुसार आरोह अवरोह एवं यति आदि के प्रभाव से स्वाभाविक रूप से ही मधुरता आ जाती है। और यदि कवि की निपुणता से थोड़ा-सा भी वैशिष्ट्य उत्पन्न हो जाता है, तो योग्य शिष्य को प्रदान की गई विद्या की भाँति वह प्रशस्त काव्य सुधियों का मनोरञ्जन करता ही है।

पद्यरचना में यह और भी महान लाभ है कि यदि कोई दोष (रचना शैथिल्य अथवा भाव-कल्पना की कमी) होता है तो वह भी छन्द के गुण से उसी प्रकार छिप जाता है जैसे चन्द्र-गत कालिमा उसके ज्योत्स्ना-जाल से आवृत हो जाती है। छन्द-शास्त्र के नियमों में निबद्ध कवि स्वेच्छानुसार श्लोक-रचना में वाध्य होता है अत एव कवि परतन्त्रता रूपी शृंखला में बद्ध बन्दी की स्थिति का अनुभव करता है। किन्तु गद्य रचना में नियमों का ऐसा बन्धन नहीं होता अतः कवि अभीष्ट काव्य-कौशल के प्रयोग में सर्वथा स्वतन्त्र होता है। और उसका कोई भी दोष किसी प्रकार से छिपाया नहीं जा सकता। उसके भाव-प्रदर्शन में कोई भी सीम या नियम बाधक नहीं होता अतः गद्य में यदि किसी प्रकार की न्यूनता प्रतीत होती है तो वह कवि-दूषण को ही सूचित करती है। इस कारण

से पद्य की अपेक्षा गद्य-रचना ही महामान्य होती है और अत्यन्त दुष्कर भी गद्य ही है। काव्य कोविदों ने कवि रूपी स्वर्ण के परीक्षण हेतु गद्य को निकष रूप में निश्चित किया है।

जिस प्रकार स्वर्ण कहलाने वाले पदार्थ के बाहुल्य होने पर भी कसौटी में कसने के पश्चात् शुद्ध स्वर्ण अल्प ही प्राप्त होता है उसी प्रकार गद्य रूपी कसौटी में, सुन्दर वर्ण-विन्यास वाले कवियों की संख्या अङ्गुलिगणनीय ही प्राप्त होती है किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृत भाषा में गद्य का अभाव है क्योंकि दैवी-वाङ्मय में वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक यजुर्वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् भाष्य, शिलालेख आदि में प्रचुर-गद्य प्राप्त होता है किन्तु पद्य की अपेक्षा गद्य की अल्पमात्रा उसके महत्त्व व गरिमा को निश्चित ही स्पष्ट करती है कि किसी एक पद के विशिष्ट चमत्कार पूर्ण विन्यास हो जाने पर भी समाज कवि को श्रेष्ठपद प्रदान कर देता है। इस सन्दर्भ में घण्टामाघ, भवभूति श्रीकण्ठ, आदि का नामकरण उल्लेखनीय है ही। किन्तु गद्य की प्रशंसा तब तक नहीं की जा सकती जब तब उसके सर्वांश में काव्य-सौष्ठव का उन्मुक्त विलास न हो। यही कारण है कि पद्यक्षेत्र में सिद्धहस्त कविवरों ने भी गद्य-क्षेत्र में हाथ नहीं डाला। तथापि संस्कृत-भाषा में गद्य-कवि-रत्नों का अभाव नहीं है क्योंकि सुबन्धु, दण्डी, बाण, अम्बिकादत्त व्यास प्रभृति ज्योतिस्तम्भों से गद्य-लोक की सुषमा अवर्णनीय ही है। संस्कृत के सदृश प्राञ्जल और प्रशस्त कल्पना-कौशल से अनुप्राणित सर्वथा हृद्य, अनवद्य गद्य रचना अन्य भाषा में सर्वथा दुष्कर है।

गद्य क्षेत्र में कवि शृंगार जैसे मधुर-भावों के अभिव्यक्तीकरण में सक्षम, मृदुलता सुधा सिंचित वर्ण विन्यास करते हुए भी कभी-कभी वीर आदि रस वर्णन में कठिन एवं विविध दीर्घ-समास पूर्ण कर्कश शब्दों की संयोजना स्वेच्छानुसार करता हुआ उस मधुसञ्चयकर्ता का अनुचरण करता है जो पुष्प-समूह के मध्य गमन करता हुआ भी कभी कुश-कण्टका-कीर्ण कानन में भी स्वच्छन्द विचरण करता है।

इस प्रकार पूर्वोक्त विचारों की समीक्षा करने पर यह निर्विरोध कहा जा सकता है कि नियम सम्बन्धी परतंत्रता का अभाव, संगठित शब्द

योजना की कठिनता, अलंकार, रीति, गुण आदि के समावेशन की स्वतंत्रता, दोषों की अगोपनीयता, अपने कल्पना-कौशल के प्रदर्शन की स्वच्छन्दता आदि गद्य-क्षेत्र के ऐसे मौलिक तत्त्व हैं जिससे परीक्षा करने पर समस्त सुवर्णसृष्टा कवि सर्वथा खरे नहीं उतरते। अत एव गद्य की गुण-गरिमा का डिण्डिम घोष करती हुई यह सामाजिकों की सूक्ति सत्य ही चरितार्थ होती है—

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

दण्डी का समय

दण्डी के स्थितिकाल के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं। दण्डी का नामोल्लेख नवम शताब्दी के ग्रन्थों में सर्वप्रथम मिलता है। इस आधार पर उनको नवम शताब्दी के बाद में नहीं रखा जा सकता। डाक्टर बार्नेट महोदय के अनुसार सिंघली भाषा के अलङ्कारग्रन्थ "सिय-वस-लकर" (स्वभापालङ्कार) की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है। महावंश के अनुसार इसका रचयिता राजा सेन प्रथम सन् ८४६ से ८६६ई० तक राज्य करता था। कन्नड़ी भाषा के अलङ्कार-ग्रन्थ "कविराजमार्ग" पर काव्यादर्श की छाया पड़ी है। इसकी रचना सन् ८१५ ई० के समीप हुई है। कविराजमार्ग में काव्यादर्श से उदाहरण लिए गए हैं, कहीं-कहीं पूर्णतः उसी रूप में कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन के साथ उनका प्रयोग किया गया है। हेतु, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण दण्डी के काव्यादर्श से अक्षरशः सारूप्य रखते हैं। कविराजमार्ग के लेखक का नाम अमोघवर्ष है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि काव्यादर्श नवम शताब्दी के पूर्व ही रचा जा चुका था और नवम शताब्दी के द्वितीय दशक के पूर्व ही पर्याप्त ख्याति भी प्राप्त कर चुका था। तभी सिंघली आदि भाषाओं के ग्रन्थों पर उसका प्रभाव पड़ा। अतः काव्यादर्श के रचयिता दण्डी को नवम शताब्दी ई० के द्वितीय दशक के पूर्व ही स्थित स्वीकार करना पड़ता है। यह तो रही दण्डी के काल की अन्तिम सीमा।

अब पूर्व सीमा की ओर विचार करना है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि काव्यादर्श में आये हुये समस्त पद्य दण्डी विरचित नहीं है। अन्य अलङ्कारग्रन्थों की भाँति काव्यादर्श में भी पूर्ववर्ती कवियों के पद्यों को उद्धृत किया गया है। लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतिसुभगं वचः में दण्डी के स्पष्टरूप से इति शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि यह अंश 'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति' कालिदास के पद्यांश से उद्धृत है। अतः कालिदास के अनन्तर ही आते हैं। दण्डी के काव्यादर्श में सेतुबन्ध नामक एक प्राकृत काव्य का उल्लेख है। सेतुबन्ध का रचयिता प्रवरसेन है जिसका स्थिति-काल पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। इससे स्पष्ट है कि काव्यादर्श के रचयिता दण्डी के स्थिति-काल की पूर्व सीमा पांचवी शताब्दी से पूर्व नहीं मानी जा सकती।

संस्कृत-गद्य लेखकों में बाणभट्ट का समय निश्चित है। इसके आधार पर दण्डी के समय के विषय में कुछ विचार किया जा सकता है। दण्डी और बाण के पौर्वापर्य के विषय में विद्वान् एक मत नहीं मालूम पड़ते। पीटर्सन और याकोवी महोदय का विचार है कि काव्यादर्श के निम्न पद्य पर बाणभट्ट कृतकादम्बरी के शुकनाशोपदेश की छाया है। दण्डी को बाण का परवर्ती सिद्ध करने के लिए विद्वानों ने अन्य प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं।

अरत्नालोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः॥ काव्यादर्श

केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। कादम्बरी।

दण्डी ने स्वयं एक पद्य में बाण और मयूर की प्रशंसा की है।

भिन्नतीक्ष्णमुखेनापिचित्रं बाणेन निर्व्यथः।
व्यवहारेषु जहौ लीलां न मयूरः······॥

प्रो० पाठक के अनुसार दण्डी ने काव्यादर्श में निर्वर्त्य, विकार्य तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यपदीय के कर्त्ता भर्तृहरि ६५० ई० के अनुसार किया है। प्रो० आर नरसिंहाचार्य तथा डॉ०वेलवल्कर ने राजवर्मा (रात-

वर्मा) तथा नरसिंह वर्मा द्वितीय (जिसका विरुद अथवा उपनाम राजवर्मा था) की एकता को मानकर दण्डी का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध किया है। शैव-धर्म के उत्थापक पल्लवराज नरसिंहवर्मा का समय ६९०-७१५ ई० माना जाता है। इस आधार पर पण्डित बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वान् दण्डी का समय सप्तम शताब्दी का अन्त तथा अष्टम शताब्दी का प्रारम्भ मानते हैं।

डॉ० भोलाशङ्कर व्यास ने दण्डी के समय पर विचार करते हुए लिखा है "कुछ विद्वान् दण्डी के काव्यादर्श को भामह के पूर्व की रचना मानते हैं। दशकुमारचरित में वर्णित सामाजिक स्थिति ठीक वही है, जो हमें मृच्छकटिक में दिखाई पड़ती है और यह हर्षवर्धन के पूर्व भारत की स्थिति का सङ्केत देती है। दण्डी निश्चित रूप से बाण से प्राचीन हैं पर २५-३० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं।"

डॉ० हरिदत्तशास्त्री भी काव्य शैलियों की तुलना के आधार पर दण्डी को बाण से पूर्ववर्ती मानते हैं। उनका तर्क है कि वाल्मीकि, कालिदास और अश्वघोष की प्रसादगुणयुक्त शैली भारवि, माघ और श्री हर्ष आदि की कविता में क्रमशः कृत्रिम और दुरूह होती गई। यही स्थिति गद्य की भी है। उपनिषदों, महाभाष्य और पञ्चतन्त्र का सरल और सरस गद्य कालान्तर में प्रौढ़ता और जटिलता की ओर अग्रसर होता गया। जिसका चरम परिपाक सुबन्धु और बाण की रचनाओं में देखा जा सकता है। दण्डी की प्रसाद गुण युक्त शैली बाण के अलंकृत गद्य में आकर विशेष प्रौढ़ता को प्राप्त हुई। दण्डी का गद्य बाण के गद्य सदृश श्लेष और वक्रोक्ति जैसे अलङ्कारों से बोझिल नहीं है। यदि दण्डी बाण के परवर्ती होते तो उनका गद्य भी बाण के गद्य सदृश विशेष अलंकृत होता। दशकुमारचरित में जिस समाज का चित्रण मिलता है वह स्पष्टतः हर्षवर्धन से पूर्व के भारत से सम्बन्ध रखता है। गुप्त राजाओं की शक्ति क्षीण होने पर जो अव्यवस्था और स्वच्छन्दता भारतीय समाज में फैली थी उसी का चित्र दशकुमारचरित में मिलता है। दण्डी निःसन्देह हर्षवर्धन के पूर्ववर्ती हैं। किन्तु दोनों में कुछ दशकों का ही अन्तर है। अतः दण्डी का स्थितिकाल ६००ई० के लग-भग निश्चित होता है।

दण्डी का जीवन परिचय

अवन्तिसुन्दी कथा के आधार पर दण्डी के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। दण्डी के पूर्वज गुजरात के आनन्दपुर नामक स्थान के रहने वाले थे। बाद में यह परिवार अचलापुर (एलिपुचर) में रहने लगा। "किरातार्जुनीय" महाकाव्य के रचयिता भारवि को दण्डी का प्रपितामह कहा जाता है। नारायण स्वामी के पुत्र का नाम दामोदर था। भारवि का वास्तविक नाम दामोदर बतलाया जाता है। दामोदर के तीन पुत्र हुए। जिनमें 'मनोरथ' मध्यम पुत्र था। मनोरथ के चार पुत्र हुए जिनमें वीरदत्त सबसे छोटा था। वह सुयोग्य एवं दार्शनिक था। वीरदत्त की पत्नी का नाम गौरी था, इन्हीं से महाकवि दण्डी का जन्म हुआ। बाल्यकाल में ही दण्डी के माता-पिता स्वर्गलोक वासी हो गए थे। ये काञ्ची में रहते थे। काञ्ची में विप्लव प्रारम्भ हो जाने के कारण ये जङ्गलों में भटकते रहे। ततः पुनः पल्लवों का अधिकार हो जाने पर पल्लव-नरेश की सभा में रहने लगे और वहीं पर उन्होंने "अवन्तिसुन्दरी कथा" की सर्जना की।

महाकवि दण्डी का उक्त परिचय तभी सत्य माना जा सकता है जब कि अवन्तिसुन्दरी कथा और दशकुमारचरित के रचयिता को एक मान लिया जाय। जहाँ कुछ विद्वान् महाकवि दण्डी को ही दोनों का रचयिता मानते हैं वही डा० डे प्रभृति विद्वान् दोनों के रचयिता को एक नहीं मानते।

दण्डी और भारवि को जिस पद्य के आधार पर जोड़ा जा रहा है। उसमें पाठ भेद प्राप्त हो जाने से कुछ विद्वान् भारवि और दामोदर को एक नहीं मानते।

स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवं गिराम्।
अनुरुध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्र विष्णुवर्धने।। १।२३

इस द्वितीयान्त 'भारविम्' के स्थान पर पूर्व पाठ प्रथमान्त भारवि प्राप्त होता है। भारविम् इस पाठ से यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन से हुई। भारवि और दामोदर दो व्यक्ति हुए और इस प्रकार दामोदर ही भारवि के प्रपितामह हुए न

कि भारवि। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि दण्डी का जन्म एक शिक्षित ब्राह्मण-कुल में हुआ था। एम० रंगाचार्य ने एक किंवदन्ती के आधार पर लिखा है कि पल्लव-राज के पुत्र को शिक्षा देने के लिए दण्डी ने काव्यादर्श की रचना की।

काव्यादर्श के टीकाकार तरुणवाचस्पति ने निम्न प्रहेलिका में काञ्ची के पल्लव नरेशों की ओर संकेत माना है।

नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता।
अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः ॥११४॥

इस प्रकार दण्डी का काञ्ची के पल्लवराज के आश्रय में रहना सिद्ध ही है।

दण्डी की रचनाएँ

शार्ङ्गधर पद्धति में राजशेखर के नाम से निम्न पद्य उद्धृत है। इस आधार पर दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की।

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदा स्त्रयो गुणाः।
त्रयोदण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

दशकुमारचरित और काव्यादर्श को प्रायः सभी विद्वान् दण्डी की ही रचना मानते हैं। दशकुमारचरित गद्य काव्य है तथा काव्यादर्श अलङ्कारशास्त्र का ग्रन्थ है। जो लोग दोनों रचनाओं को एक ही दण्डी की कृति नहीं मानते हैं उनका तर्क है कि काव्यादर्श में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है दशकुमारचरित में उनका पालन नहीं हुआ। एक व्यक्ति स्वयं प्रतिपादित सिद्धान्तों की अवहेलना नहीं कर सकता। इसका उत्तर कुछ विद्वानों ने यह दिया है कि दशकुमारचरित दण्डी का युवावस्था में रचित ग्रन्थ है और काव्यादर्श की रचना के समय कवि ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान की प्रौढ़ता को प्राप्त कर लिया था। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि दण्डी की तृतीय रचना कौन है। काव्यादर्श में 'छन्दोविचिति और कलापरिच्छेद का उल्लेख मिलने के कारण छन्दोविचिति को तृतीय रचना मानते हैं। इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता छन्दोविचिति कोई स्वतन्त्रग्रन्थ है। डा० कीथ के अनुसार छन्दोवि-

चित और कलापरिच्छेद कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ न ही है अपितु दो परिच्छेद थे जिन्हें वह काव्यादर्श के परिशिष्ट के रूप में देना चाहते थे। भोज के श्रृंगार-प्रकाश में दण्डिद्विसंधान का उल्लेख मिलता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय इस दण्डिद्विसंधान महाकाव्य को दण्डी की तृतीय रचना मानते हैं। यह महाकाव्य आज अनुपलब्ध है। इसमें श्लेष के द्वारा रामायण और महाभारत के कथानको का वर्णन किया गया है। पिशेल मृच्छकटिक को दण्डी की तृतीय रचना मानते हैं। इसके लिए उन्होंने दो तर्कों को उपस्थित किया है। प्रथम मृच्छकटिक का एक पद्य (लिम्पतीव तमोऽङ्गानि) काव्यादर्श में विना कवि के नाम के उद्धृत है। द्वितीय दशकुमारचरित और मृच्छकटिक में एक सी सामाजिक दशा का चित्रण उपलब्ध होता है। इस द्वितीय तर्क के आधार पर इतना तो कहा जा सकता है कि दोनों का रचना काल एक हो पर यह सिद्ध नहीं हो सकता कि दोनों रचनाएँ एक ही कवि की है। भास के नाटकों के उपलब्ध होने के कारण प्रथम मत भी तथ्यहीन हो गया है क्योंकि वह पद्य भास के नाटकों में उपलब्ध होता है। कुछ विद्वान् दण्डी की तृतीय रचना के रूप में मल्लिका मारुत का नाम लेते हैं। पर यह रचना उद्दण्ड रङ्गनाथ (१५ वीं शताब्दी ई०) द्वारा रचित सिद्ध हो चुकी है।

अब मुख्य रूप से अवन्तिसुन्दरी कथा को दण्डी की तृतीय रचना के रूप में कहा जाता है। इस कथा का पता मद्रास से प्राप्त दो हस्तलेखों से चलता है। एक हस्तलेख गद्य में है द्वितीय पद्य में। गद्य में लिखित ग्रन्थ का नाम अवन्तिसुन्दरी कथा माना गया है और उसके रचयिता के रूप में दण्डी का स्मरण किया जाता है। अवन्तिसुन्दरी कथा दण्डी के दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका का प्रारूप है। डा० भोलाशङ्कर व्यास का कथन है "हमें अवन्तिसुन्दरी कथा को दण्डी की कृति मानने में आपत्ति है और सच बात तो यह है कि महाकवि दण्डी की तृतीय कृति का अभी हमें पता नहीं लग पाया है।" आचार्य बलदेव उपाध्याय ने दशकुमार-चरित का मूल अवन्तिसुन्दरी कथा को मानते हुए लिखा है—"अवन्ति-सुन्दरी ही दण्ड का द्वितीय प्रबन्ध है जिसकी उपलब्धि न होने से कालान्तर

में "दशकुमारचरित" ही उसका स्थानापन्न ग्रन्थ मान लिया गया। तथ्य दोनों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि अवन्तिसुन्दरी ही मूल ग्रन्थ है जिसका सार अंश दशकुमारचरित में निबद्ध किया गया, परन्तु कब? इस प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। ध्यान देने की बात है कि दशकुमारचरित का नाम न तो अलंकार के किसी ग्रन्थ में और न किसी व्याख्या ग्रन्थ में ही निर्दिष्ट किया गया है। इससे उक्त कथन की पुष्टि होती है।

दशकुमारचरित (कथानक)

दशकुमारचरित के प्रारम्भ में पांच उच्छ्वासों की पूर्वपीठिका है। ततः आठ उच्छ्वासों की कथा है जिनमें केवल आठ कुमारों की कहानियां कहीं गई है अन्त में उपसंहारात्मक उत्तरपीठिका है। विद्वनों का कथन है कि पूर्वपीठिका तथा उत्तरपीठिका दण्डी की लेखनी से लिखित नहीं है। ये बाद के परिवर्धन है। दण्डी के आठ उच्छ्वासों की कथा को पूरा करने का कई कवियों ने प्रयत्न किया। भट्ट नारायण (वेणीसंहार नाटक के रचयिता से इतर कवि), विनायक, चक्रपाणि और गोपीनाथ ने दशकुमारचरित में समय-समय पर परिवर्धन किए हैं। दण्डी के दशकुमार-चरित के मूल कलेवर में केवल आठ कहानियां ही उपलब्ध होती हैं, नाम को सार्थकता बनाए रखने के लिए पूर्वपीटिका में पुष्पोद्भव और सोमदत्त की कथा को जोड दिया गया है। इसके अतिरिक्त उसमें राजवाहन तथा उसकी प्रेयसी अवन्तिसुन्दरी की कथा है। इधर "अवन्तिसुन्दरीकथा" के प्राप्त हो जाने पर विद्वान् उक्त कथा को ही दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका मानते हैं। अवन्तिसुन्दरी कथा को दण्डी की मौलिक कृति के रूप में स्मरण किया जाता है। अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुपलब्ध हो जाने पर दशकुमारचरित को क्रमबद्ध बनाने के लिए पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका को जोड़ दिया गया। यही कारण है कि मूल ग्रन्थ तथा पूर्वपीठिका के कथानकों में घटना वैषम्य प्राप्त होता है।

दशकुमारचरित म राजकुमारों के देश-विदेश में भ्रमण तथा साहस-पूर्ण कार्यों का हृदयहारक वर्णन है। यह गद्य-साहित्य की एक अनूठी कृति है। यह एक यथार्थवादी रचना है यद्यपि संस्कृत-साहित्य सदैव

आदर्शोन्मुख रहा है परम्परा के अनुसार संस्कृत-ग्रन्थों के नायक उदात्तता तथा शालीनता आदि गुणों से युक्त होते हैं, परन्तु, इस ग्रन्थ के राजकुमार अपनी कार्यसिद्धि के लिए अनुचित साधनों को भी अपनाने में संकोच का अनुभव नहीं करते। इसमें छल, कपट, परस्त्रीहरण, हिंसा, अवैध प्रेम आदि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। जादूगर, चञ्चल तपस्वी, हृदयहीन वेश्याओं, धूर्तकुट्टिनियों, सेवकों, नर्मव्यापार के दूती कर्म में प्रवीण भिक्षुणियां तथा उत्सुक प्रेमियों का चित्रण उपलब्ध होता है।

उच्छ्वास विवरण

पूर्वपीठिका—प्रथम उच्छ्वास में राजहंस तथा वसुमती आदि का वर्णन
द्वितीय उच्छ्वास में कुमारों की दिग्विजय-यात्रा
तृतीय उच्छ्वास में सोमदत्तचरित
चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पोद्भवचरित
पञ्चम उच्छ्वास में राजवाहनचरित का प्रारम्भ

मध्यभाग—प्रथम उच्छ्वास में राजवाहनचरित की समाप्ति
द्वितीय उच्छ्वास में अपहारवर्मा का चरित
तृतीय उच्छ्वास में उपहारवर्मा का चरित
चतुर्थ उच्छ्वास में अर्थपाल का चरित
पञ्चम उच्छ्वास में प्रमति का चरित
षष्ठ उच्छ्वास में मित्रगुप्त का चरित
सप्तम उच्छ्वास में मन्त्रगुप्त का चरित
अष्टम उच्छ्वास में विश्रुत का चरित

उत्तरपीठिका—में विश्रुतचरित की समाप्ति तथा ग्रन्थ का उपसंहार।

पूर्वपीठिका का कथासार

प्रथम उच्छ्वास—मगध देश में पुष्पपुरी नाम की एक उत्तम नगरी है। वहाँ राजहंस नाम का राजा राज्य करता था। वसुमती नाम की अद्वितीय सुन्दरी उसकी रानी थी। उसके धर्मपाल, पद्मोद्भव तथा सितवर्मा नामक कुलक्रमागत तीन मन्त्री थे। उनमें धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र तथा कामपाल नामक तीन, पद्मोद्भव के सुश्रुत और रत्नोद्भव

नामक दो तथा सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा नामक दो पुत्र हुए। उनमें विलासी एवं दुर्विनीत कामपाल घुमक्कड़ हो गया, रत्नोद्भव विदेशों से व्यापार में लग गया और सत्यवर्मा संसार से विरक्त होकर तीर्थयात्राभिलाषी होकर विचरण करने लगा। शेष चारो अपने जनकों के दिवंगत हो जाने पर उनके स्थान पर मन्त्री हो गए।

एक बार राजहंस तथा मालवा के राजा मानसार में युद्ध छिड़ गया। पहले तो राजहंस ने विजय पाई, किन्तु अन्त में उसे पराजित होकर विन्ध्य के अरण्य में शरण लेनी पड़ी। वहां वह अपने नष्ट हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने की इच्छा से वामदेव नामक तपस्वी की शरण में गया और उसकी सलाह से वहाँ कुछ वर्षों तक रहा। उसके चारो मन्त्री भी उसके साथ गए। वहाँ रानी ने राजवाहन नामक एक पुत्र को जन्म दिया। वहीं चारो मन्त्रियों के भी, सुमति के प्रमति, सुमन्त्र के मित्रगुप्त, सुमित्र के मन्त्रगुप्त तथा सुश्रुत के विश्रुत नामक पुत्र उत्पन्न हुए। जव राजहंस वन में निवास कर रहे थे, तो पृथक्-पृथक् समय में उसके पास पाँच अन्य वालक लाए गए। यही दशकुमार इस कथा 'दशकुमारचरितम्' के नायक हैं।

मिथिलाधिपति प्रहारवर्मा राजहंस का मित्र तथा युद्ध में सहायक था। राजहंस के पराजित होने पर वह अपने देश को भागा। मार्ग में भीलों ने उस पर आक्रमण करके लूट लिया। उसके दोनों पुत्र भी बिछुड़ गए। उनमें से एक को एक ब्राह्मण ने छुड़ा लिया और राजा के पास ले आया। राजहंस ने उसका नाम उपहारवर्मा रखा और अन्य कुमारों के साथ उसका भी पालन-पोषण किया। अन्य अवसर पर राजा को प्रहारवर्मा का दूसरा पुत्र भी मिल गया जिसे उसने अपहारवर्मा नाम देकर अपने संरक्षण में रख लिया। रत्नोद्भव अपनी पत्नी सहित समुद्री यात्रा कर रहा था, जहाँ उसका जहाज टूट गया और उस दुर्घटना में उसका पुत्र मां से अलग हो गया, जिसे एक ब्राह्मण बचा कर राजा के पास लाया और उसका पुष्पोद्भव नाम रखा। कामपाल ने एक यक्षराज की पुत्री तारावती के साथ विवाह किया, जो अपने पुत्र अर्थपाल को राजहंस की पत्नी के पास लाई। सत्यवर्मा के पुत्र को उसकी विमाता ने ईर्ष्यावश एक नदी में फेंकवा दिया

गया, जहाँ से बचाकर वह राजहंस के पास लाया गया, जिसने उसका नाम सोमदत्त रखा। इस प्रकार एकत्र हुए इन दशकुमारों की साथ-साथ शिक्षा-दीक्षा हुई और वे समस्त कला और विज्ञानों में प्रवीण हो गए।

द्वितीय उच्छ्वास—जब सब राजकुमार बड़े हुए, तो तपस्वी वामदेव की सलाह से राजा ने उनको दिग्विजय यात्रा पर भेजा। कुछ समय तक तो वे साथ-साथ यात्रा करते रहे, किन्तु विन्ध्यवन में एक आगन्तुक ब्राह्मण राजवाहन को चुपचाप साथियों को छोड़कर उसे (ब्राह्मण को) पाताल लोक का आधिपत्य प्राप्त करने में, जैसी कि भगवान् शिव ने स्वप्न में उससे भविष्यवाणी की थी, सहायतार्थ लिवा ले गया। वे दोनों एक सुरङ्ग (बिल) के मार्ग से पाताल गए और अपने कार्य में सफल हुए। किन्तु जब कुमार राजवाहन उस स्थान पर लौट कर आया जहाँ उसने अपने साथियों को छोड़ा था, तो वे सब वहाँ से उसी की खोज में चल चुके थे। (जब वे राजवाहन से आ कर पुनः मिले, तो उन्होंने अपने-अपने साहसपूर्ण कार्यों का उससे वर्णन किया, जो 'दशकुमारचरित' के नाम से उनकी प्रणय-कथाओं का चित्रण है)।

अपने साथियों की खोज में भटकता हुआ राजवाहन उज्जयिनी पहुँचा, जहाँ एक उद्यान में उसकी सोमदत्त से भेंट हुई, जिसके साथ शानदार परिचारक वर्ग तथा एक सुन्दरी युवती थी राजवाहन के पूछने पर सोमदत्त ने अपना चरित वर्णन करना प्रारम्भ किया।

तृतीय उच्छ्वास—लाट देश के राजा मत्तकाल ने उज्जयिनी के राजा वीरकेतु के राज्य पर इस आशय से आक्रमण किया कि वह अपनी पुत्री वामलोचना को उसके साथ विवाह दे। सोमदत्त ने वीरकेतु का सहायक बन कर मत्तकाल की सेनाओं को हरा कर प्रथम युद्ध में ही उसे मार डाला। कृतज्ञता से अभिभूत हो कर वीरकेतु ने अपनी पुत्री का विवाह सोमदत्त से कर दिया तथा उसे अपना युवराज भी बना लिया। जब सोमदत्त अपनी पत्नी के साथ एक ज्योतिषी के आदेशानुसार महाकाल के मन्दिर को जा रहा था, तब मार्ग में उसकी राजवाहन से भेंट हो गई। जब सोमदत्त अपनी कथा समाप्त कर चुका, तभी वहाँ पुष्पोद्भव आ पहुँचा

जिसने राजवाहन के प्रार्थना करने पर अपना चरित वर्णन करना प्रारम्भ किया।

चतुर्थ उच्छ्वास—कई दिन तक इधर-उधर भटकने के पश्चात् एक दिन पुष्पोद्भव ने अपने पिता रत्नोद्भव को एक कगार से कूदते हुए देखा जो सोलह वर्ष पूर्व जहाज की दुर्घटना में अपनी पत्नी से बिछुड़ गया था। और उस दुःख को सहन करने में असमर्थ होकर आत्महत्या करना चाहता था। कुछ समय पश्चात् पुष्पोद्भव ने एक स्त्री को जो उसकी माँ निकली, अग्नि में कूदते से बचाया। इस प्रकार अपने माता-पिता से पुनः मिलकर पुष्पोद्भव उज्जयिनी आया जहाँ उसकी एक धनी व्यापारी बन्धुपाल से मित्रता हुई। वहाँ उसकी पुत्री बालचन्द्रिका से परस्पर प्रेम हो गया। बालचन्द्रिका के साथ दारुवर्मा विवाह करना चाहता था। किन्तु वह उसके दुराचारी तथा आततायी होने के कारण घृणा करती थी। अतः पुष्पोद्भव की सलाह से बालचन्द्रिका ने प्रदर्शित किया कि उसके ऊपर एक यक्ष आता है और वह उसी शूरवीर के साथ पाणिग्रहण करेगी जो उसे यक्ष से मुक्त करायेगा। दारुवर्मा यक्ष को मारकर बालचन्द्रिका को प्राप्त करने के लिये उसके पास एकान्त में गया जहाँ उसकी सखी के वेष में स्थित पुष्पोद्भव ने दारुवर्मा को मार दिया। और कुछ दिनों के बाद पुष्पोद्भव का बालचन्द्रिका से विवाह हो गया। बन्धुपाल ज्योतिषी ने पुष्पोद्भव को बताया था कि उज्जयिनी में उसका राजवाहन से मिलन होगा। पुष्पोद्भव के आत्मकथा कहने के पश्चात् राजवाहन सोमदत्त और पुष्पोद्भव सहित उज्जयिनी आये जहाँ उन्होंने अपने को एक ब्राह्मण पुत्र के रूप में छिपाया।

पञ्चम उच्छ्वास :—उज्जयिनी में रहते हुए राजवाहन ने एक दिन अपने पिता राजहंस के शत्रु राजा मानसार की सुन्दर पुत्री अवन्तिसुन्दरी को देखा। राजकुमार तथा राजकुमारी दोनों ही एक दूसरे को देखकर परस्पर आसक्त हो गये। मानसार ने अपना राज्य अपने पुत्र दर्पसार के हाथों में सौंप दिया था जो अपने भतीजे दारुवर्मा और चण्डवर्मा को युवराज नियुक्त करके तपस्या करने चला गया। इनमें से दारुवर्मा को पुष्पोद्भव ने मार दिया और चण्डवर्मा हीं उसके राज्य का

उत्ताराधिकारी बना। एक ऐन्द्रजालिक ब्राह्मण विद्येश्वर की सहायता से राजवाहन और अवन्तिसुन्दरी का अग्नि को साक्षी करके विवाह हो गया। और वे दोनों सुरति-सुख के लिए अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए।

यहीं पर पूर्वपीठिका समाप्त हो जाती है। राजवाहन के चरित्र का अवशिष्ट भाग आगे दशकुमारचरित के मध्यभाग के प्रथमउच्छ्वास में समाप्त होता है।

दण्डी की शैली एवं वर्णन कौशल

दण्डी वैदर्भी[1] गद्यरीति के आचार्य हैं। दण्डी की रचना में समस्त पदों की न्यूनता तथा माधुर्य व्यञ्जक वर्णो का प्रयोग पाया जाता है। बाणभट्ट के गद्य सदृश दीर्घकाय समासों का बाहुल्य दण्डी के गद्य में दृष्टिगत नहीं होता। यदि कहीं समस्तपद आये भी हैं, तो वे सरल एवं सुस्पष्ट हैं, बाण के समान दीर्घकाय वाक्यों का प्रयोग भी दण्डी की रचनाओं में नहीं दिखलाई पड़ता है। वस्तु वर्णनों में जहाँ कहीं दण्डी ने दीर्घ वाक्यों का प्रयोग किया भी है वे भी बाण के वाक्यों से छोटे ही हैं।

दण्डी की भाषा सजीव, चुस्त, प्रवाहमयी एवं प्रसाद गुणयुक्त है। अर्थ की स्पष्टता, रस की रम्य अभिव्यक्ति, कल्पना की सजीवता और पदलालित्य ये दण्डी की शैली के विशेष गुण हैं। अनुप्रास तथा शाब्दी क्रीडा का विशेष मोह दण्डी की शैली में अधिक नहीं है। यही कारण है कि पूर्व-पीठिका की कृत्रिम शैली को देखकर विद्वान् यह अनुमान लगाने लगे हैं कि यह पूर्व-पूठिका दण्डी की लेखनी से निःसृत नहीं है।

तत्र वीरभटपटलोत्तरंगतुरंगकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटक जलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्ड भुजदण्डः, पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरण-परायणगीर्वाणतरुणगणिकागणजेगीयमानयातिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसार-नीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या, रचितदिगन्तरालपूर्त्या कीर्त्याऽभितः सुरभितः, स्वर्लोकशिखरोरुरुचिररत्न-रत्नाकरमेखलावलयित धरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान् ' ···भूयो बभूव।

---

१. वैदर्भीरीति का लक्षण है—माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैं रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते॥
अर्थात् माधुर्यगुण के व्यञ्जक कोमल वर्णों की लालित्यपूर्ण रचना जिसमें समासों का अभाव अथवा अल्पता (लघुसमासयुक्त रचना) हो, वैदर्भीरीति कही जाती है।

डॉ० भोलाशंकर व्यास के शब्दों में—"दण्डी वैदर्भीरीति के सफल कवि हैं। वैसे वर्णनों में दण्डी के भी वाक्यों में यत्र-तत्र समासान्त शैल मिल जाती है पर वे शाब्दी या आर्थी क्रीडा के फेर में अधिक नहीं फंसते, अभिव्यञ्जना की स्वाभाविकता और अर्थ की स्पष्टता की ओर दण्डी का खास ध्यान रहता है और कभी-कभी शाब्दी या आर्थी क्रीडाओं का प्रयोग भी किया जाता है पर वे प्रभावोत्पादकता या अर्थ प्रतीति में वाधक नहीं होती। नख-शिख वर्णन तथा प्रकृति-चित्रण के लिए वाण की वहुत प्रशंसा की जाती है, पर दण्डी के ये वर्णन उस पैमाने के न होने पर भी असुन्दर नहीं हैं।"

सरल तथा प्रसाद गुण युक्त शैली की प्रेरणा दण्डी को पञ्चतन्त्रादि आख्यान ग्रन्थों से मिली थी। पञ्चतन्त्र में जहाँ सुगम भाषा और सरल शैली का प्रयोग है वहाँ शैली और विषय के बीच उचित सन्तुलन नही मिलता। दण्डी ने कौशल के साथ कथाओं के विषय अनुरूप ही अपनी गद्य-शैली को ढाला है। पञ्चतन्त्र की भांति न कथा-विषय को प्रधानता देकर काव्य की सरसता में व्याघात पहुँचाया है और न सुवन्धु और वाण भट्ट की कृत्रिम शैली को अपनाकर कथा तत्त्व को गोण वनाया है। दण्डी की शैली सुवन्धु की श्लेषाक्रान्त शैली की भांति कृत्रिम न होकर विषयानुकूल है। वाण जहाँ समान्तपदावली के प्रयोग को ही गौरव मानते हैं वहीं दण्डी वस्तु के वर्णन के अनुरूप समस्त एवं समास रहित दोनों प्रकार की पदावलियों के प्रयोग में सिद्धहस्त है। यदि कहीं समस्त पदावली का प्रयोग किया भी है तो वह स्थल इतने दुरुह नहीं हो पाए हैं कि उनका अर्थ विशेष कठिनाई से समझा जा सके।

दण्डी का पदलालित्य प्रसिद्ध ही है। दण्डी ने गद्य रचना वड़ी कुशलता के साथ की है जिसमे यथोचित सरसता एवं सुकुमारता के दर्शन होते हैं—

निशास्वपि श्मशानमधिरात्रे. निजनिलयनिशितनिःशेषजने नितान्त निशीते निशीथे, अयुग्मशरःशरशयने शाययिष्यति, सखे! सैषा सज्जनाचरिता सरणिः यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते ······।

दण्डी के दशकुमारचरित में अर्थ की स्पष्टता एवं अभिव्यक्ति की यथार्थता पाई जाती है, उनके वाक्य विन्यास ओजस्वी, ललित एवं सुव्यक्त हैं वही कल्पना की उर्वरता एवं शब्दविन्यास की चारुता दण्डी

की शैली की विशेषताएँ हैं। दण्डी ने मुहावरेदार भाषा का भी प्रयोग किया है— अभवदीयं हि नैव किञ्चित् मत्सम्बद्धम्।

दशकुमारचरित के आख्यानक काव्य होने पर भी उसकी भाषा श्लेषादि अलंकारों तथा दीर्घसमासों के बाहुल्य से दबी नहीं है। दण्डी ने दशकुमारचरित में ललित-पदावली का प्रयोग किया है। पदे-पदे हास्य और वाक्पटुता की पुट प्राप्त होती है।

राजहंसो नाम घनदर्पकंदर्पसौंदर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव।

आनुप्रासिक चमत्कार के साथ-साथ यमक की छटा भी दर्शनीय है। मन्त्रगुप्त की कहानी में दण्डी ने चित्रकाव्य शैली का भी प्रयोग किया है। मन्त्रगुप्त ओष्ठ्य वर्णों का उच्चारण नहीं करता क्योंकि प्रेयसी के चुम्बनों तथा दन्तक्षतों ने उसके ओठों को क्षत कर दिया है। सुबन्धु और दण्डी ने अपनी शैली की ओर अधिक ध्यान दिया है पर दण्डी का ध्यान अभिव्यञ्जनापक्ष की ओर ही नहीं है।

दशकुमारचरित में हास्य तथा व्यंग्य का भी पुट है। जिससे पाठक उसकी ओर आकृष्ट होता है। कुमार अपनी कार्यसिद्धि के लिए नैतिकता पर ध्यान नहीं देते। कुमारों के अनुभवों का हास्यात्मक वातावरण समूची कृति में प्राप्त होता है। काममञ्जरी तपस्वी मारीच को भी ठग लेती है। चम्पा के कंजूसश्रेष्ठियों का धन चुराने वाले अपहारवर्मा की कहानी में हास्य है। रानी का वेष बनाकर राजा विकटवर्मा को धोखा देने की उपहारवर्मा की योजना में भी व्यंग्य प्राप्त होता है। प्रसंगानुकूल दण्डी की शैली में परिवर्तन हो जाता है। विश्रुतचरित में करुणवर्णना में गम्भीर शैली को अपनाया है। धूमिनी, गोमिनी निम्बवती तथा नितम्बवती की कहानियों की शैली अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक है। दण्डी का भाषा पर पूर्ण अधिकार था।

दण्डी ने राजमार्ग, निर्जन अरण्य, श्मशान, राजमहल आदि का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता के साथ उपन्यस्त किया है। अकाल का करुण भयंकर वर्णन उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का उदाहरण है—

तेषुजीवत्सु नववर्षं वर्षाणि द्वादश दशशताक्षः, क्षीणसारं सस्यम्, ओषध्यो वन्ध्याः, न फलवन्तो वनस्पतयः, क्लीबा मेघाः, क्षीणस्रोतसः स्रवन्त्यः, पङ्कशेषाणिपल्लवानि निर्निस्यन्दान्युत्समण्डलानि, विरलीभूतं

कन्दमूलफलम्, अवहीनाः कथाः, गलिताः कल्याणोत्सवक्रियाः, बहुलीभूतानि तस्करकुलानि, अन्योन्यमभक्षयन्प्रजाः, पर्यलुठन्नितस्ततो बलाकापाण्डुराणि नरशिरः कपालानि, पर्यहिण्डन्त शुष्काः काकमण्डल्यः शून्यीभूतानि नगर ग्रामखर्वटपुट भेदनादीनि ।

दशकुमारचरित में सूर्योदय एवं सूर्यास्त के सुन्दर चित्रण मिलते हैं। ये वर्णन पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप ही है। द्वितीय उच्छ्वास में मरीचि कथा प्रसंग में सूर्यास्त का वर्णन आया है। यह संन्ध्या के समय सूर्य इसलिए छिप रहा है क्योंकि पथ-भ्रष्ट महर्षि मारीच के मन से निः सृत अज्ञानान्धकार उसका स्पर्श न करले। मुनि का राग सन्ध्याकालीन राग के रूप में परिणत हो जाता है। मुनि के कथन से वैराग्य प्राप्त कमल वन संकुचित हो जाते हैं।

अथ तन्मनश्च्युततमः स्पर्शभियेवास्तं रविरगात्। ऋषिमुक्तश्च रागः सन्ध्यात्वेनास्फुरत्। तत्कथादत्तवैराग्याणीव कमलवनानि संकुचन्।

तृतीयउच्छ्वास में भी सूर्यास्त का सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है—

"अस्तगिरिकुटपातक्षुभितशोणित इव शोणी भवति भानुबिम्बे पश्चिमाम्बुधि पयः पातजिर्वापितयतङ्गागारघधसम्भार इव भरिततमसि नभसि विजृम्भिते"।

उत्प्रेक्षालंकार के परिवेश में लिपटे हुए सूर्योदय का वर्णन देखिए—

चिन्तयत्येव मयि महार्णवोन्मानमार्तण्डतुरंगश्वासरयावधूतेव व्यवर्तत त्रियामा। समुद्रगर्भवासजडीकृत इव मन्दप्रतापो दिवसकरः प्रादुरासीत्।

जहाँ दण्डी नख-शिख वर्णन में कुशल हैं वही भयंकर वर्णन भी करने में नहीं चूकते। कापालिक सिद्ध का भयंकर वर्णन बड़ा ही प्रभावोत्पादक बन गया है।

इति दिदृक्षाान्तहृदयः किंकरगतया दिशा किंचिदन्तरं गतस्तरलतरनरास्थिशकलरचितालंकाराक्रान्तकायम्, दहनदग्धकाष्ठनिष्ठाङ्गाररजः कृताङ्गरागम्, तड़िल्लताकारजटाधरम्, हिरण्यरेतस्यरण्यचक्रान्धकारराक्षसे क्षणगृहीतनानेन्धनग्रासचञ्चदर्चिषि दक्षिणेतरेण करेण तिलसिद्धार्थकादीन्निरन्तरचटचटायितानाकिरन्तं कञ्चिदद्राक्षम्।

दशकुमारचरित के सप्तमउच्छ्वास में वसन्तऋतु का संक्षिप्त और परम्परागत चित्रण उपलब्ध होता है। जो शृङ्गारिक कथा के सर्वथा अनुकूल है।

दण्डिनः पदलालित्यम्

संस्कृत-जगत् में दण्डी के सम्बन्ध में "दण्डिनः पदलालित्यम् "यह सूक्ति प्रचलित है। दण्डी की रचनाओं में वाणभट्ट सदृश दीघसमास वाली पदावलियों का जहाँ अभाव है वहाँ सुवन्धु की प्रत्यक्षरश्लेष वाली शैली का भी अभाव है। दण्डी ने वर्णन के अनुकूल समस्त या असमस्त पदावली का प्रयोग किया है। पञ्चतन्त्र की सरल एवं स्पष्ट शैली में जहाँ विषयानुकूलता प्राप्त नहीं होती वहाँ दशकुमारचरित की शैली इस दोष से मुक्त है। दण्डी की रचना में जहाँ विषयानुकूल पदावली मिलती है वहाँ पदलालित्य भी है।

निष्ठुर वेश्या महर्षि मरीचि की समस्त-आशा-लताओं पर लालित्यपूर्ण शब्दों के द्वारा तुषारापात कर देती है।
भगवन् ! अयमञ्जलिः। चिरमनुगृहीतोऽयं दासजनः, स्वार्थ इदानी मनुष्ठेयः।

दण्डी की गद्य रचना के पढ़ने में लय है। शब्दों की इस संयोजना ने ही उसमें लालित्य उपस्थित कर दिया है।

तत्र चकोरलोचनावचितपल्लवकुसुमनिकुरम्बं महीरुह समूहं शरदिन्दुमुख्या मन्मथसमाराघनस्थानं च नताङ्गी पदपंक्तिचिह्नितं शीतलसैकततलं च सुदतीभुक्तमुक्तं माधवीलतामण्डपान्तरपल्लवतल्पं च विलोकपॅल्ललनातिलकविलोकनवेलाजनितशेषाणि स्मारं-स्मारं मन्दमारुतकम्पितानि नवचूतपल्लवानि मदनाग्निशिखा इव चकितो दर्शं दर्शं मनोजकर्णजपानामिव कोकिलकीरमधुकराणा क्वणितानि श्रावं श्रावं मारविकारेण क्वचिदप्यवस्थातुम सहिष्णुः परिबभ्राम।

राजकुमार को जो पत्र उसकी प्रयसी से प्राप्त हुआ था उसमें समास रहित, मधुर एवं सरल पदावली दृष्टिगोचर होती है।

सुभग कुसुमसुकुमारं जगदनवद्यं विलोक्य ते रूपम्।
मम मानसंसमभिलषति त्वं चित्तं कुरु तथा मृदुलम् ॥

महाकवि दण्डी की रचना में अनुप्रासमिश्रित ललितपदावली सहृदयपाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है।

राजहंसो नाम घनदर्पकंदर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव।

अनुप्रासयुक्त पदावली के साथ ही साथ यमक की छटा ने इसके काव्य में चार चांद लगा दिये हैं।

तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणीरमणी बभूव।

मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः स विग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूपो निर्जगाम।

लावण्योपमिपमितपुष्पसायक, भूनायकः भवानेव भाविन्यपि जन्मनि बल्लभो भवतु।

दण्डी का दशकुमारचरित इन ललित्यपूर्णपदावलियों से भरपूर है।

दण्डी की यह पदलालित्य एवं संगीतलय-पूर्णशैली विषय तथा वर्ण्य-रस (शृङ्गार आदि) के सर्वथा अनुकूल होने से पाठक के हृदय को त्वरित प्रभावित कर लेती है।

दशकुमारचरित का साहित्यिक मूल्याङ्कन

'दशकुमारचरित' दण्डी की एक मौलिक कृति है। इसका वर्तमान संस्करण तीन भागों में विभाजित है—

(१) पूर्वपीठिका। (२) दशकुमारचरित। (३) उत्तरपीठिका।

इनमें से केवल मध्यभाग दशकुमारचरित ही दण्डी की रचना मानी जाती है। पं० बलदेव उपाध्याय ने इस पर अपना मन्तव्य इस प्रकार दिया है—"मूल ग्रन्थ के आठ उच्छ्वासों में केवल आठ ही कुमारों की कार्यावली का रुचिर विन्यास है, परन्तु नाम की सार्थकता सिद्ध करने के लिए पूर्वपीठिका में अन्य दो कुमारों का चरित्र जोड़ दिया गया है तथा अधूरे ग्रन्थ को पूर्णता की कोटि पर पहुँचाने के लिये अन्त में उत्तरपीठिका भी जोड़ी गई है। इस प्रकार आरम्भ में पूर्वपीठिका से तथा अन्त में उत्तरपीठिका से सम्पुटित मूलग्रन्थ ही आज दशकुमारचरित के अभिधान से विख्यात है।

'दशकुमारचरित' में शब्दविन्यास की कलित-क्रीड़ा देखते ही बनती है। नाद सौन्दर्य का एक उदाहरण देखिये—

"तयोरथ रथतुरग खुरक्षुण्णक्षोणी समुद्भूते करिघटाकटस्रवन्मदधारा धौतमूले नव्यवल्लभवरणागतदिव्यकथाजनजवनिकापटमण्डप इव वियत्तलव्याकुले धूलीपटले दिविषद् ध्वनि धिक्कृतान्यध्वनिपटहध्वान वधिरिताशेषदिगन्तरालं शस्त्राशस्त्रि हस्ताहस्ति परस्परामित सैन्यं जन्यमजनि"।

दण्डी के काव्य का सबसे बड़ा गुण उनका पदलालित्य है। उनकी कृति में अर्थ की स्पष्टता और रस की मार्मिक व्यञ्जना प्रत्यक्ष ही विलसती है। दशकुमारचरित की भाषा में चुटीलापन एवं स्वाभाविकता के साथ प्रवाहपूर्णता भी है। दण्डी ने तत्कालीन समाज एवं संस्कृति को बड़े ही व्यंग्य-विनोद युक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। दण्डी की गद्यशैली को हृदयंगम करने के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

'अथैकदा वामदेवः सकलकलाकुशलेन कुसुमशायकसंशयितसौन्दर्येण कल्पितसोदर्येण साहसोपहसितकुमारेण सुकुमारेण जयध्वजातपवारेण-कुलिशाङ्कितकरेण कुमार निकरेण परिवेष्टितं राजानमानतशिरसं समभिगम्य तेन तां कृतां परिचर्यामङ्गीकृत्य निजचरणकमल युगलमिलन्मधुकराय-माणकाकपक्षं विदलिष्यमाण विपक्षं कुमारचयं गाढमालिङ्गचमितसत्य वाक्येन विहिताशीरभ्यभाषत ।'

दण्डी अपनी वैदर्भी गद्य-शैली के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। उनकी गद्यशैली बड़ी ही सुबोध, सरस एवं मार्दवमयी है। प्रसादगुण तो दण्डी की कृति की व्यक्तिगत विशेषता है। उसकी भाषा में न तो अलंकारों का अनावश्यक आडम्बर है और न दीर्घ-समासों का साम्राज्य ही। सुबन्धु की प्रत्यक्षरश्लेषमयी विचार धारा दण्डी को नहीं रुची। दशकुमारचरित की भाषा वर्ण्यविषय के अनुरूप परिवर्तित होती हुई चलती है उसमें दैनन्दिनवाग्व्यवहार का सहज चित्रण है। पं० बलदेव उपाध्याय के शब्दों में :—

"साहित्यिक दृष्टि से दशकुमारचरित एक श्लाघनीय रचना है। यह आख्यान काव्य का उज्ज्वल दृष्टान्त है, जिसके पात्र जीते-जागते जगत् के प्राणी हैं और जिनका चित्रण शिष्ट हास्य तथा मधुर व्यंग्य का आश्रय लेकर प्रस्तुत किया गया है। कथानक में पारस्परिक मनोरम सामञ्जस्य है। वर्णन की स्वल्पता न तो कथानक के प्रवाह को रोकती है और न अवान्तर कथाएँ मुख्य कथा में किसी प्रकार का अवरोध खड़ा करती हैं।"

इस प्रकार 'दशकुमारचरित' दण्डी का वह कीर्तिमान् स्तम्भ है जो साहित्यिक-सौन्दर्य की सभी विधाओं की अप्रतिम प्रयोगशाला है और यह साहित्यिक दृष्टिकोण से संस्कृत गद्य की एक अनुपम एवं अनूठी कृति है। 'दशकुमारचरित' की लोकप्रियता ने दण्डी को वाल्मीकि तथा व्यास के पश्चात् होने वाला उनके समान तृतीय कवि का स्थान दिया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् ।
कवि इति ततो व्यासे कवयस्त्वपि दण्डिनि ॥

दण्डी के काव्य में सामाजिक-स्थिति

दशकुमारचरित एक यथार्थवादी रचना है। उसमें तत्कालीन समाज का स्वाभाविक स्वरूप चित्रित किया गया है। दण्डी ने तत्कालीन समाज को अति सूक्ष्मदृष्टि से देखा और उसका वैसा ही चित्रण उपस्थित किया। तत्कालीन समाज पर व्यंग्य और विनोदपूर्ण ये यथार्थचित्रण हृदय-

हारक वन गए हैं। दण्डी समान्य नैतिक मूल्यों अथवा उच्च आदर्शों के प्रति कम आस्थावान् हैं। उनके पात्र आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी हैं। थोथे आदर्श की कलई खोलने वाले हैं। दम्भी तपस्वी, कपटी ब्राह्मणों, कुट्टिनियों, दासियों आदि के चित्र यथार्थवादी हैं। दण्डी ने देवताओं और तपस्वियों की दुर्बलताओं का भी चित्रण किया है। पूर्वपीठिका में देवताओं और ब्राह्मणों का आदर्शवादी रूप मिलता है। पूर्वपीठिका में ब्राह्मणों को भूसुर कहा गया है तथा देवताओं के यजन का भी वर्णन है पर मध्यभाग (मूलदशकुमारचरित) में इस प्रकार के चित्रण नहीं मिलते इसी आधार पर आलोचक पूर्वपीठिका को वाद में जोडा हुआ तथा अन्य कवि की रचना मानते हैं। दण्डी के पात्र ऐसे भी कार्य करते हुए दिखलाई पड़ते हैं जिनको अनुचित कहा जा सकता है। ऐसे वर्णनों में कहीं-कहीं कवि ने नैतिकता की पुट लगा दी है। यथा अपहारवर्मा चोरी में इसलिए प्रवृत होता है क्योंकि वेश्या द्वारा निर्धन वनाए हुए व्यक्ति की उसे सहायता करनी है, इस कार्य में भी अपहारवर्मा का कोई भी स्वार्थ निहित नहीं है। दशकुमारचरित के पात्र दैवीशक्ति पर विश्वास न रखकर अपने पुरुषार्थ पर विश्वास रखने वाले हैं। दैवीशक्तियाँ उनके कार्यों को सम्भव है इतना सफल न वना पाती। दण्डी का उद्देश्य इन कथाओं के द्वारा नीतिशास्त्र अथवा व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देना न था वल्कि वह अपने पाठकों को इन विचित्र कथाओं के द्वारा आनन्दित करना चाहते थे।

दम्भी तपस्वी धूर्तब्राह्मणों और छली वेश्याओं के यथार्थचित्रण दशकुमारचरित में प्राप्त होते हैं। काममञ्जरी नामक वेश्या मरीचि नामक एक महर्षि को अपनी कुशलता से इस प्रकार ठगती है कि पाठक उसे पढ़कर मन्त्रमुग्ध-सा हो जाता है। दण्डी ने ब्राह्मणों और पुरोहितों की दुर्बलताओं को पाठकों के सम्मुख लाकर रख दिया है। दण्डी ने मार्कण्डेय ऋषि का उपहासात्मक चित्रण उपस्थित किया है। जिसने अपने ऊपर अप्सरा की हारयष्टि गिर जाने से क्रुद्ध होकर उसे रजत शृङ्खला हो जाने का शाप दे दिया था। मरीचि को आकृष्ट करने के लिए काममञ्जरी ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वृहस्पति, पराशर आदि देवी देवताओं और ऋषियों को प्रमाण रूप से उपस्थित करती है। अन्त में वह मरीचि को अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हो जाती है। इसी प्रकार दण्डी ने राजा, श्रेष्ठी, वेश्याओं और दूती कर्म में नियुक्त वौद्ध भिक्षुणियों पर भी

आक्षेप किए हैं। उसके पात्र भले ही कहीं दैव का नाम ले दें पर वे पुरुपार्थ पर ही विश्वास रखते हैं। चोरी करते समय अपहारवर्मा तथा दस्युओं के साथ पकड़ा जाने वाला पूर्णभद्र अपनी विपत्ति का कारण दैव को वतलाने पर भी अपने साहस और उद्यम को प्रदर्शित करता है।

दण्डी ने नारी के प्रत्येक रूप का चित्रण उपस्थित किया है यदि कहीं नारी पतिवञ्चक एवं क्रूरहृदया है तो कहीं पतिपरायणा और मृदुहृदया भी है। धूमिनी यदि क्रूरता की मूर्ति है तो गोमिनी पतिप्राणा सती है।

दण्डी के दशकुमारचरित में राजनीति, कामशास्त्र, चौर-शास्त्र के नियमों का यथास्थान परिचय मिलता है। जिससे तत्कालीन सामाजिक स्थिति का सुचारु-रूप से अध्ययन किया जा सकता है। गुप्तकाल की समाप्ति एवं हर्षवर्धन के राज्य की स्थापना के पूर्व देश की यही स्थिति हो गई थी। मृच्छकटिक में भी इसी समाजिक स्थिति का चित्रण मिलता है।

दण्डी के समय शैवधर्म की प्रधानता थी। शिव की तपस्या के प्रसाद से ही मातङ्ग पाताललोक का स्वामी वनता है। श्रावस्ती नगरी में शिव (त्र्यम्बक) के समीप समाज एकत्र होता था—अतीतायां तु यामिन्यां देवदेवस्य त्र्यम्बकस्य श्रावस्त्यामुत्सवसमाजमनुभूय बन्धुजनम्।.........जैनधर्म का भी प्रचार हो चुका था। वौद्धभिक्षुणियां विवाहकार्य के लिए दूतीका कार्य किया करती थी। संगीत एवं मनोरञ्जन के लिए विशेप सभागृह हुआ करते थे। मुर्गों का युद्ध भी हुआ करता था। मित्र के आगमन पर कपूरमिश्रित ताम्बूल देने का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में व्यवसाय का अधिक प्रचलन था। सीमन्तोत्सव मनाने का प्रचलन था। व्यापारी जन अपने व्यापार के लिए नावों पर यात्रा करते थे तथा वैलों की सहायता से माल ढोया करते थे। शकुन आदि पर विश्वास किया जाता था वन्धुपाल के द्वारा शकुन वतलाए जाने पर भी पुष्पोद्भव राजवाहन से मिलता है। स्त्रियाँ आभूषणों का प्रयोग किया करती थीं। कामी पुरुष अपनी प्रेयसी को स्वर्णजटित आभूपण, सुन्दरवस्त्र, कस्तूरी और हरिचन्दन, कर्पूरमिश्रित ताम्बूल तथा सुगन्धित पुष्प दिया करते थे। राजाओं के मनोरञ्जन के लिए जादूगर भी घूमा करते थे।

दण्डी की इस रचना में उक्त प्रकार के समाज का यथार्थपूर्ण मनोहर चित्रण किया गया है।

गद्य कवियों में दण्डी का स्थान

संस्कृत भाषा के प्रमुख गद्यकारों में दण्डी का अप्रतिम स्थान है। वे उच्चकोटि के सरस कवि हैं। दण्डी के गद्य-काव्य का कथानक जहाँ वैचित्र्यपूर्ण हैं वहाँ सरस एवं प्रवाहपूर्ण वर्णनशैली भी तदनुरूप है। दण्डी का प्रशस्त कीर्ति-स्तम्भ 'दशकुमारचरित' ही है। नैसर्गिक शैली, विशद चरित्रचित्रण, शिष्टपरिहास, बुद्धि-विलास, रसानुरूप शब्द-विन्यास इत्यादि गुण-गण 'दशकुमारचरित' को गद्यसाहित्य में मूर्धन्य स्थान प्रदान करते हैं। दण्डी का प्रधान वैशिष्ट्य है अपने समकालीन समाज का अनावरण-चित्रण।' दण्डी ने तात्कालिक समाज को सूक्ष्मदृष्टि से देखा था एवं उनका सामाजिक अनुभवक्षेत्र भी व्यापक था, उन्होंने समाज के भद्र-अभद्र दोनों ही पक्षों को अपने चित्रण में प्रतिविम्बित किया है। 'दशकुमारचरित' में कपटी एवं दम्भी तपस्वी ब्राह्मण तथा छली वेश्याओं का चित्रण इतना रुचिकर एवं यथार्थ हुआ है कि पाठकों को मन्त्र-मुग्ध हो जाना पड़ता है। नारीमनोविज्ञान में भी दण्डी का प्रवेश कम नहीं है। 'घूमिनी' जैसे घृणित और 'गोमिनी' जैसे पवित्र नारीचरित्र उनकी ही बुद्धि की उपज है।

दण्डी का कलापक्ष भी अत्यन्त मनोज्ञ है। उनकी रचना में पदलालित्य का प्राधान्य है। दण्डी जैसा पदलालित्य न तो सुबन्धु की 'वासव दत्ता' में है और न वाणभट्ट के हर्षचरित व कादम्बरी में ही। अनुप्रास युक्त मनोरम पद-विन्यास में वे अत्यन्त सिद्धहस्त हैं। उदाहरणार्थ—

१. असत्येनास्य नास्यं संसृज्यते।

२ अपुष्पशरः शरशयने शाययिष्यति।

३. स पुण्यैः कर्मभिः प्राप्य पुरुषायुषं पुनरपुण्ये न प्रजानाभगण्यता भरेषु। आदि।

इस प्रकार उनकी अनुप्रासमयी मनोरम पदावली नितान्त अभिराम है। दण्डी की वर्णनशैली सरल और प्रसादपूर्ण है। वे अपनी वैदर्भी गद्यशैली

और पदलालित्य के लिये विशेष ख्यात हैं—'दण्डिनः पदलालित्यम्।
वैदर्भी रीति का प्रकृष्ट प्रयोग यदि पद्य में कालिदास ने किया है तो गद्य में दण्डी ही वैदर्भी के अप्रतिम प्रयोजक हैं।

"दण्डी की गद्यशैली बड़ी ही सुबोध सरस तथा प्रवाहमयी है उनका गद्य न तो श्लेप के बोझ से वही दबा हुआ है और न कहीं समास के प्रहार से प्रताड़ित है। उनका गद्य दिन-प्रतिदिन के व्यवहार योग्य, सजीव और चुस्त है। उसकी प्रसादमयता (सरलता) दण्डी की निजी विशेषता है। ये अपनी भाषा को अलंकारों के आडम्बर (अनावश्यक बोझ) से सदा बचाते हैं। इसीलिये इनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, मंजी हुई और मुहाविरेदार है। सुबन्धु के गद्य के समान न तो वह प्रत्यक्षर श्लेषमय है और न वाणीय गद्य के समान समासों से लदी हुई तथा गाढ़बन्धता से मण्डित ही। तथ्य यह है कि गद्य के इतिहास में दण्डी का अपना निजी मार्ग है।"

पं० बलदेव उपाध्याय

दण्डी ने छोटे से छोटे सरल वाक्यों में जीवन के महनीय तथ्यों को उभारा है जो कि व्यञ्जना से ओतप्रोत हैं। स्थालीपुलाकन्याय से यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. अभवदीयं हि नैव किञ्चित मत्सम्बद्धम्।
   (मेरा सर्वस्व आपका ही है।)
२. जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुःपञ्चान्यहानि।
   (जीवन क्या है? दो-चार दिनों का नाम।)
३. स्वदेशो देशान्तरमिति नेयं गणना विदग्धस्य।
   (विदग्ध-जन इस प्रकार नहीं सोंचते कि यह अपना देश है वह पराया)

दण्डी के गद्य का यह स्पृहणीय स्वरूप अन्य किसी कवि-कृति में नहीं दीखता। पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय ने दण्डी की वर्णन-विधा का बड़ा सटीक उल्लेख किया है—

'उनकी शब्द-योजना में रस छलका पड़ता है। हास्य, वाक्पटुता एवं सूझ की चटकीली उर्वरता स्थल-स्थल पर दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अपने कथानकों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया है कि वे सर्वथा सुसंगठित

होकर खिल उठे हैं। भाषावैभव का प्रदर्शन उन्होंने न किया हो ऐसी बात नहीं, पर साहित्यिक अलङ्करण में कहीं-कहीं फँस जाने पर भी वह दुरूह और अरुचिकर नहीं है। सुललित एवं सुगम गद्य लिखने में दण्डी निष्णात हैं और उनकी रचना, कला से चमत्कृत सामाजिक चुनौतियों के कारण, एक महान प्रौढ़ और रस-पेशल रचना के रूप में सम्पन्न हुई है।'

—पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय

दण्डी के काव्य में शब्दविन्यास का सर्वोत्तम गुण नाद-सौन्दर्य या श्रुति-विलास भी है। "वे सुबन्धु तथा बाण इन दोनों में से किसी की भी शैली का अनुगमन न कर एक नवीन प्रकार की शैली के उद्भावक हैं, जिनके विशेष गुण हैं—अर्थ की स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, पद का लालित्य तथा दैनन्दिन प्रयोग की क्षमता। 'दण्डिनः पदलालित्यम्' के ऊपर पण्डित समाज अपने को निछावर किये हुए है।

—आचार्य बलदेव उपाध्याय

इस प्रकार दण्डी सभी गद्यकवियों में अग्रगण्य हैं। उनके पदलालित्य पर विमोहित होकर एक समीक्षक ने एकमात्र उन्हें ही कवि माना है—

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।

आचार्य दण्डी की प्रशस्तियां

१. कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।

२. त्रयोऽग्नयस्त्रयोदेवास्त्रयोवेदास्त्रयोगुणाः।
त्रयोदण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

३. जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्याभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

४. आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसंपदाम्।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणि दर्पणः॥

५. दण्डिनः पदलालित्यम्।



श्रीगणेशाय नमः

दशकुमारचरितम्

पूर्वपीठिका

प्रथमोच्छ्वासः

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः।
क्षोणीनौकूपदण्ड क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः॥
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः।
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः॥

हिन्दी अर्थ – आचार्य दण्डी वामनावतार भगवान् विष्णु का स्मरण कर रहे हैं।

भगवान् विष्णु का दण्ड के सदृश चरण आपका कल्याण करे, जो चरण ब्रह्माण्डरूपी छत्र का दण्ड है अथवा ब्रह्मा जी की उत्पत्ति स्थान भूत कमल का नालदण्ड है। पृथिवीरूपी नाव का कूपदण्ड [पतवार] है प्रवहमान आकाश गङ्गारूपी ध्वजा का केतुदण्ड है। अथवा नक्षत्र समुदाय रूपी चक्र [रथचक्र] का अक्षदण्ड है [लकड़ी का दण्डविशेष धुरी] अथवा तीनों लोकों की विजय का सूचक स्तम्भ है, तथा देवों से द्वेष रखने वाले अर्थात राक्षसों के लिए यमराज के तुल्य अर्थात मृत्युरूप है। [इस प्रकार का भगवान् का चरण आप लोगों का कल्याण करे]।

अन्वयः—ब्रह्माण्ड छत्रदण्डः, क्षतधृति भवनाम्भोरुहः नालदण्डः, क्षौणी-नौकूपदण्डः, क्षरदमर सरित्पट्टिका केतुदण्डः, ज्योतिश्चक्राक्षदण्डः,त्रिभुवन विजयस्तम्भदण्डः, विबुध द्वेषिणां कालदण्डः त्रैविक्रमः अङ्घ्रिदण्डः ते श्रेयः वितरतु।

संस्कृतव्याख्या:–अस्मिन् श्लोके महाकविः दण्डी वामनरूपेणावतीर्णस्य बालिछलनापरस्य भगवतः विष्णोः चरणस्य स्मरणं करोति।

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः = ब्रह्माण्डमेव भुवनमेव जगदित्यर्थः छत्रमातपत्रम् तस्य दण्डः आधारयष्टिः भगवतो विष्णोर्विश्वविश्वाधारत्वात्, शतधृतिभवना-म्भोरुहः=शतंधृतयो यस्य स शतधृतिर्ब्रह्मा तस्य भवनमुत्पत्तिस्थानं तद्

से उदात्त अलंकार: = "उदात्तमृद्धेश्चरितं श्लाध्यं चान्योपलक्षणम्" ये दोनो अलंकार परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थित होने के कारण संसृष्टि अलंकार हैं। पुष्पपुरी आधुनिक पटना का नाम है।

मगधराज हंस वर्णनम्—

तत्रवीरभटपटलोत्तरङ्ग तुरङ्ग कुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथन मन्दरायमाण समुद्दण्ड भुजदण्डः, पुरन्दर पुराङ्गणवन विहरण परायण तरुणगणिकागणजेगीयमानयातिमानया शरदिन्दु कुन्दधनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलाशकाशनीकाशमूर्त्यारचितदिगन्तराल पूर्त्या कीर्त्याभितः सुरभितः, स्वर्लोक शिखरोरूरुचिररत्नरत्नाकर वेलामेखलायितधरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान्, अनवरत यागदक्षिणारक्षितशिष्ट विशिष्टविद्यासम्भारभासुरभूसुरनिकरः विरचितारातिसन्तापेन प्रतापेन सतततुलितवियन्मध्यहंसः, राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव।

हिन्दी अर्थ—उस नगरी में राजहंस नामक राजा हुआ। उसकी विशाल भुजाएँ योधाओं के समूह रूप तरंगों, घोड़े और हाथियों रूप मकरों से भयप्रद, सेना समुद्र को मथने के लिए मन्दराचल पर्वत के तुल्य थीं। जिसकी कीर्ति अमरावती के आँगन में अर्थात् नन्दनवन में विहार में तत्पर तरुण अप्सराओं के द्वारा गायी जाती थी तथा शरत्कालिक चन्द्रमा, कुन्दपुष्प, कपूर तुषार [वर्फ] मुक्ताहार, कमलनाल, हंस, ऐरावत [इन्द्र का हाथी], पानी, दूध, शंकर का अट्टहास, कैलाश पर्वत, काशपुष्प के तल्य मूर्ति वाली, दिशाओं के मध्यभाग की पूर्ति करने वाली कीर्ति से सुगन्धित अर्थात् मनोहर था। सुमेरु पर्वत के शिखर के विशाल और सुन्दर रत्नों से युक्त या देवों के शिर पर लगी हुई मनोहर मणियों वाला सागर की तट रूपी करधनी से घिरी हुई पृथ्वी रूपी स्त्री के सौभाग्य का भोग करने वाला था, निरन्तर यज्ञों में दक्षिणाओं के द्वारा शिष्ट एवं विद्वान ब्राह्मण समुदाय का रक्षक था, शत्रुओं को कष्ट देने वाले प्रताप के द्वारा जो मध्याह्न के सूर्य के सदृश था, अपने रूप के अभिमानी कामदेव के रूप के तुल्य अर्थात् काम को भी तिरस्कृत करने वाला उसका रूप था। इस प्रकार अनिन्द्य रूप वाला राजहंस नामक राजा हुआ।

संस्कृतव्याख्या :—तत्र राजहंसो नाम भूपो बभूवेत्यन्वयः। तत्र= पुष्पपुरीनामनगर्याम, वीरभट पटलोत्तरङ्गतुरगकुञ्जरमकरभीषण सकल-रिपुगणकटक जलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डः = वीराणां शूराणां, भटानां युयुत्सूनां योद्धृणां पटलेन वृन्देन समूहेन वा उत्तरङ्गः उद्गताः तरंगाः वीचयः यस्मिन् सः अथवा वीराश्च ते भटाः वीरभटाः तेषां पटलानि तैः उद्गताः तरंगाः यस्य यस्मिन् वा स उत्तरंगः, तुरगाः, घोटकाः कुञ्जराः हस्तिनः ते मकराः नक्राः इव [मगर इति भाषायाम्] तैः भीषणः भयंकरो भीतिप्रदो वा अथवा तुरगाश्च कुञ्जराश्च तुरगकुञ्जराः त एव मकराः तैः भीषणः, सकलानां निखिलानां रिपूणां शत्रूणां गणः समूहः तस्य कटकं सेना जलनिधिः सागर इव तस्य मथने मन्थने आलोडने वा मन्दरायमाणः मन्दराचल इवाचरन् [मन्थनदण्ड इवेतिभावः] समुद्दण्डः समुन्नतः समुद्यतो वा भुजो बाहुर्दण्ड इव यस्य सः इत्थंभूतः राजहंसः इत्यर्थः-अथवा सकलाश्च ते रिपवः तेषां गणः तस्य कटकं तदेव जलनिधिः तस्य मथने मन्दर इवाचरन् समुद्दण्डो भुज दण्डो यस्य सः, पुरन्दर पुराङ्गणवन विहरणपरायण तरुणगणिकागण जेगीयमान याति मान या=पुरन्दरस्य इन्द्रस्य यत पुरं नगरं पुरन्दरपुरं [अमरावतीति भावः] तस्य अङ्गणवने चत्वरोपवने नन्दनवने इत्यर्थः विहरणपरायणेन विहरणतत्परेण भ्रमणशीलेन वा तरुण गणिकागणेन तरुणाप्सरोवृन्देन जेगीयमानया कीर्त्यमानया अति अत्यन्तं मानं परिमाणं यस्याः तया अर्थात् अपरिमितया अति प्रमाणया वा, शरदिन्दुकुन्दघनसार नीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहास कैलासकाशनीकाशमूर्त्या=शरदः शरदृतोः इन्दुश्च चन्द्रश्च कुन्दश्च माध्य पुष्पञ्च नीहारश्च हिमश्च हारश्च मौक्तिकस्त्रक् च मृणालं च बिसञ्च मरालश्च हंसश्च सुरगजश्च ऐरावतश्च नीरञ्च सलिलञ्च क्षीरञ्च दुग्धञ्च गिरिशस्य शङ्करस्य अट्टहासश्च महाहास्यञ्च कैलासश्च कैलाशपर्वतश्च काशश्च काशपुष्पविशेषश्च तैः नीकाशा सदृशी समा वा मूर्तिः स्वरूपं यस्याः तया, रचित दिगन्तरालपूर्त्या=रचिता विहिता कृता वा दिगन्त-रालानां दिग्मध्यभागानां पूर्तिः सम्पूर्तिः पूरणं वा यया तया, कीर्त्या= यशसा, अभितः परितः सर्वतो वा सुरभित=मनोहरः, स्वर्लोकशिखरोरु रुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलायित धरणी रमणी सौभाग्य भोग भाग्यवान्=

स्वः स्वर्गः लोकः आश्रयः येषां ते स्वर्लोकाः देवा इति भावः तेषां शिखरेषु मौलिषु शिरःसु वा उरुणि स्थूलानि पीवराणि वा रुचिराणी सुन्दराणि रत्नानि मणयो यस्येत्थं भूतस्य रत्नाकरस्य उदधेः वेला सीमा तट प्रदेशो वा सैव मेखला काञ्चीदाम तयेवाचरिता, धरणी धरैव रमणी कान्ता तस्याः सौभाग्यस्य ऐश्वर्यस्य भोगे उपभोगे भाग्यवान् भाग्यशाली यः सः, अथवा स्वर्लोकः सुरालयो मेरुः तन्नामकः पर्वतः तस्य शिखरं तद्वत् तत् सम्बन्धीनि वा उरुणि सुन्दराणि रत्नानि तद्युक्तो रत्नाकरः शेषं पूर्ववत्, अनवरत यागदक्षिणा रक्षित शिष्ट विशिष्टविद्यासम्भार भासुरभूसुरनिकरः=अनवरतं सततं यागेषु यज्ञेषु या दक्षिणाद्रव्यदानं तया रक्षितः संरक्षितः पालितो वा शिष्टानां सदाचारानुरक्तानां विशिष्ट विद्यासम्भारेण विविध-शास्त्र ज्ञानाधिक्येन भासुराणां देदीप्यमानां भूसुराणां ब्राह्मणानां निकरः समूहो येन सः, अथवा शिष्टाश्च ते विशिष्टविद्यासम्भारेण भासुराः भूसुराः तेषां निकरो येन तेन, विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन=विरचितो विहितोऽ-रातीनांमरीणां सन्तापः दुःखं क्लेशो वा येनेत्थं भूतेन प्रतापेन=ऐश्वर्येण तेजसेत्यर्थः, सतततुलितवियन्मध्यहंसः=सततं निरन्तरं तुलित उपमितो वियत आकाशस्य मध्यहंस मध्याह्न कार्तिकसूर्यः येन, प्रतापेन सूर्योपम इत्यर्थः, घनदर्पकन्दर्प सौन्दर्य-सोदर्य हृद्य निरवद्य रूपः=घनो निविडः सान्द्रो वा दर्पाऽवलेपः यस्य तस्य कन्दर्पस्य कामदेवस्य यत् सौन्दर्यं रूपं तस्य सोदर्यं सदृशं समानं वा हृद्यं रमणीयं निरवद्यं निर्दोषं निष्कलंकं वा रूपं श्रीः यस्येत्थं भूतो राजहंसो नाम भूपः=नृपः, बभूव= अभवत् ।

टिप्पणी —वीरभट पटल—इत्यादि अंश में पहले उपमित समास के आधार पर विग्रह किया गया है क्योंकि उसकी भुजाओं को मन्दराचल के समान बताने वाले क्यङ् प्रत्यय का प्रयोग किया गया है अतः उपमा अलं-कार ही उचित है किन्तु रूपक समास की दूसरी व्याख्या भी लिखी गयी है। यह व्याख्या अरुचिकर है। यदि रूपक अलंकार माना जाय तो सेना के ऊपर जलनिधि का आरोप होने से उसी का प्राधान्य होने से, उसमें भुजाओं के द्वारा मन्थन सम्भव नहीं। अतः उपमा अलंकार ही उचित प्रतीत होता है यथा मुखचन्द्रः प्रकाशते. मुख चन्द्रं चुम्बति इत्यादि सन्देहास्पद स्थलों पर क्रिया के आधार पर ही उपमा और रूपक का निर्णय लेना

चाहिए। स्वर्लोक—इत्यादि अंश में रूपक अलंकार है कीर्ति के भी विभिन्न उपमान प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रकार उपमा और रूपकों की निरपेक्ष भाव से स्थिति होने से संसृष्टि अलंकार है। "वारस्त्री गणिकावेश्या' इत्यमरः 'निभसंकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः' स्त्रीकट्यां मेखलाकाञ्ची सप्तकी-रशनातथा' अभिघातिपरारातिप्रत्यर्थिपरिपन्थिनः' इत्यमरः।

राज्ञीवसुमती वर्णनम्—

तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव।

हिन्दी अर्थ—उस राजा राजहंस की वसुमती नामक रानी थी जो अच्छी बुद्धि वाली तथा स्त्रीसमुदाय की मुकुटमणि थी।

संस्कृतव्याख्याः—तस्य=राजहंसस्य, वसुमती=तन्नामधेया महिषी, सुमती=सु सुष्ठु शोभना वा मतिः बुद्धिर्यस्या सा, लीलावती कुलशेखरमणी =लीलावतीनां प्रमदाना कान्तानां वा कुलस्य समूहस्य शेखरस्य शिरोभू-षणस्य मुकुटस्य वा मणिः रत्नमिवेति, रमणी=पत्नी महिषीत्यर्थः, बभूव =आसीत्।

टिप्पणी—मणी + रमणी की 'रोरि' सूत्र की सन्धि रमणीय वनपड़ी है। अनुप्रास भी द्रष्टव्य है।

रोषरूक्षेण निटिलाक्षेण भस्मीकृतचेतने मकरकेतने तदा भये-नानवद्या वनितेति मत्वा तस्य रोलम्बावली केशजालम्, प्रेमाकरो रजनीकरो विजितारविन्दं वदनम्, जयध्वजायमानो मीनो जाया-युतोऽक्षियुगलम्, सकलसैनिकाङ्गवीरो मलयसमीरो निःश्वासः, पथिकहृद्दलनकरवालः प्रवालश्चाधर बिम्बम्, जयशङ्खो बन्धुरा लावण्यधरा कन्धरा, पूर्णं कुम्भौ चक्रवाकानुकारौ प्रयोधरौ, ज्याय-माने मार्दवासमाने बिसलते च बाहू, ईषदुत्फुल्ल लीलावतंसकह्लार कोरको गङ्गावर्तसनाभिर्नाभिः, दूरीकृतयोगिमनोरथो जैत्ररथोऽति-घनं जघनम्, जयस्तम्भभूते सौन्दर्यभूते विघ्नतयति जनारम्भे रम्भे चोरुयुगम्, आतपत्रसहस्रपत्रं पादद्वयम्, अस्त्रभूतानि प्रसूनानि तानीतराण्यङ्गानि च समभूवन्निव।

हिन्दी अर्थ—(एकवार) क्रोध के कारण कठोर भगवान् शंकर ने तृतीयनेत्र से काम को जला देने पर भय के कारण (उसके सहायकों ने) मानो उस रानी को प्रशस्त स्त्री समझ कर (अर्थात् भगवान् शंकर मुझे न

जला देवें इस कारण से भयभीत होकर उसके सहायकों ने इसी रानी में अपनी सुरक्षा समझ करके अपने स्वरूपानुसार प्रत्येक अङ्ग का आश्रय लिया। भ्रमर समुदाय ने केशसमूह का, प्रेम के भण्डार चन्द्रमा ने कमल को जीतने वाले मुख का, विजयध्वज के चिन्ह पानी सहित मछली ने नेत्रयुगल का, सम्पूर्ण सैनिकों के प्रधान मलय वायु ने निश्वास का पथिकों के हृदय को भेदन करने में तलवार के सदृश पल्लव ने अधरोष्ठ का विजयशंख के सदृश उच्चावच सौन्दर्य ने कण्ठ का, दोनो पूर्ण घटों ने चक्रवाक के समान दोनों स्तनों का, धनुष की डोरी के समान कोमलता में अतुलनीय कमल तन्तुओं ने भुजाओं का कुछ खिले हुए कर्णभूषण बने हुए कमलकालिका ने गङ्गा के भ्रमर के तुल्य नाभि का, योगियों के मनोरथ (ब्रह्म साक्षात्कार) को दूर करने वाले विजयशील रथ ने जघनस्थल का, ऋषियों के (योगाभ्यास) में बाधा पैदा करने वाले सौन्दर्य स्वरूप तथा विजयस्तम्भ रूप केलेयुगल ने दोनों जांघों का, छत्र के तुल्य कमल ने दोनों पैरों का अस्त्रभूत पुष्पों ने उसके अन्य अंगों का मानो आश्रय लिया।

संस्कृतव्याख्या :—रोषरूक्षेण=रोषेण क्रोधेन रुक्षः कठोरो निष्ठुरो वा तेन निष्कृपेणेतिभावः, निटिलाक्षेण=ललाटनेत्रेण निटिले ललाटे अक्षिः नेत्रं यस्य तेन शंकरेणेत्यर्थः, भस्मीकृत चेतने=भस्मीकृता विनाशिता चेतना चैतन्यं यस्य तस्मिन् , मकरकेतने=मकरो नक्रः केतने ध्वजे यस्य तस्मिन् कामे तदा=तदानीम, भयेन=भीत्या (भस्मीकरणस्य) अनवद्या=निष्कलंका निर्दोषा वा, वनिता=कान्ता, इति मत्वा=सुविचार्य निश्चित्य वा, तस्य=कामदेवस्य, रोलम्बावली=रोलम्बानां भ्रमराणां अवली पंक्तिरिति भ्रमर श्रेणीत्यर्थः, केशजालम्=केशवृन्दम, प्रेमाकरः प्रेम्णः स्नेहस्य आकरः खनिः रजनीकरः=चन्द्रः, विजितारविन्दम्विजितं प्रभयान्यक्कृतं अरविन्दं कमलं ये न तत्, वदनम्=आननं मुखम्वा, जयध्वजायमानः=जयध्वजः विजयकेतनं तद् इवाचरतीति, जायायुतः=सस्त्रीकः, मीनः=मत्स्यः, अक्षियुगलम्=नेत्र द्वन्द्वम्, सकलसैनिकाङ्गवीरः=सकलेषु अखिलेषु सैनिकेषु भटेषु अङ्गवीरः प्रधानभटः, मलयसमीरः=मलयवायुः, निश्वासः= निश्वास वायुः, पथिकहृद्दलनकरवालः=पथिकां पान्थानां हृद्दलने हृदय विदारणे करवालः खड्गः, प्रवालः=किसलयं, अधरबिम्बम्=अधरोष्ठः,

जयशंखः = विजयशंखः. वन्धुरा = निम्नोन्नता, लावण्यधरा = सौन्दर्ययुता, कन्धरा = ग्रीवा, पूर्णकुम्भौ = जलपूर्णघटौ, चक्रवाकानुकारी = चक्रवाक सदृशौ, पयोधरौ = स्तनौ, ज्यायमाने = ज्या इव मौर्वीव आचरत्यौ मार्दवा-समाने = मार्दवे मृदुत्वे असमाने असदृशे, बिसलते = मृणालयुगलमिति भावः, बाहू = भुजौ, ईषदुत्फुल्ल लीलावतंसकह्लार कोरकः = ईषत् स्वल्पं उत्फुल्लं विकचं लीलावतंसः कर्णभूषणं यत् कह्लारं कमलं तस्य कोरकः कुड्मलः, गङ्गा वर्त सनाभिर्नाभि. = गङ्गायाः भागीरथ्याः आवर्तः भ्रमः तस्य सनाभिः समा नाभिः, दूरीकृतयोगि मनोरथः = दूरीकृताः अपनीताः योगिनां योगाभ्यासप-राणां मनोरथाः अभिलाषाः येन सः, जैत्ररथः = विजयरथः, अतिघनम् = अति संयुक्तम्, जघनम् = जघन प्रदेशः, जयस्तम्भभूते = विजयस्तम्भ स्वरूपे (कामस्येतिशेषः) सौन्दर्यभूते = लावण्ययुक्ते, विघ्नितयतिजनारम्भे = विघ्निताः बाधायुक्ताः कृताः यतिजनानां मुनिजनानां आरम्भाः = उद्योग-कर्माणि याभ्यां ते, रम्भे = कदल्यौ, ऊरुयुगम = सक्थि द्वन्द्वम्, आतपत्रसह-स्रपत्रम् = आतपत्रं छत्रं तद् रूपं यत् सहस्रपत्रं कमलं, पादद्वयम् = चरण-युगलम्, अत्रभूतानि = अत्र जातानि, प्रसूनानि = पुष्पाणि, इतराणि = पूर्ववर्णितभिन्नानि, अङ्गानि = शरीराङ्गानि समभूवन् = अभवन्, इव = इत्युत्प्रेक्षायाम् ।

टिप्पणी—क्रिया उत्प्रेक्षा अलंकार है। अरविन्दमशोकं च शिरीषं चूतमुत्पलम्" यह पांच कामदेव के बाण हैं। 'पयोधरौ' शब्द का चमत्कार द्रष्टव्य है क्योंकि स्तन भी पयोधर है और पूर्णकुम्भ भी पयोधर हैं। [जल] 'इन्दिन्दिरोऽली रोलम्बो द्विरेफः' इति हैमः 'खनिः स्त्रियामाकरः' 'पान्थः पथिकः', 'कौक्षेयकः मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत्" "वन्धुरं तून्नतानतम्" "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" 'प्रसूनं कुसुमं सुमम्' इत्यमरः।

विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखमन्वभावि ।

हिन्दी अर्थ —अमरावती [इन्द्रपुरी] को जीतने वाली [सुन्दरता से] पुष्पपुरी नामक नगरी में रहते हुए मगधराज राजहंस ने शेषनाग के फणों से लालित पृथ्वी से समान अपार भोगों सन्तुष्ट वसुमती नामक रानी के साथ सुखोचित विहार किया ।

संस्कृतव्याख्या:—विजितामरपुरे=विजितं सौन्दर्येण तिरस्कृतं अमरपुरं देवनगरं येन तस्मिन्, पुष्पपुरे=कुसुमपुरे तन्नामके पत्तने, निवसता=निवासं कुर्वता, सानन्तभोगलालिता=सा=राज्ञी, अनन्तस्य वासुकेः भोगेन फणेन लालिता धृतेति [पृथ्वीपक्षे] अनन्ताश्च अपरिमिताः संख्यातीताः वा ते भोगाः तैः लालिता परितुष्टा [इत्थंभूता राज्ञी] वसुमतीवः=पृथ्वीव, वसुमती=तन्नाम महिषी, मगधराजेन=मगधेश्वरेण, यथासुखम् = सुखमनतिक्रम्येति सुखानुसारमित्यर्थः। अन्वभावि=उपभुक्ता।

टिप्पणी—श्लेषानुप्राणित उपमा अलंकार। अन्वभावि=अनुपूर्वक 'भू' सत्तायां धातु से कर्म में लुङ् लकार होता है।

अमात्य वर्णनम्—

तस्य राज्ञः परमविधेया धर्मपालपद्मोद्भवसितवर्मनामधेया धीरधिषणावधीरितविबुधाचार्यविचार्यकार्यसाहित्याः कुलामात्यास्त्रयोऽभूवन्।

हिन्दी अर्थ—उन महाराज के परम विनीत तथा अपनी गम्भीर बुद्धि से देवगुरु वृहस्पति को भी विचारणीय कार्य समुदाय में अनाहत करने वाले धर्मपाल, पद्मोद्भव एवं सितवर्मा नामक तीन कुलक्रमागत मन्त्री थे।

संस्कृतव्याख्या:—तस्य=पूर्वोक्तस्य, राज्ञः=मगधराजस्य नृपस्य परमविधेयाः=परमविनीताः, धीरधिषणावधीरित विबुधार्यविचार्यकार्य साहित्याः धीरा प्रगल्भा गभीरा वा या धिषणा बुद्धिः तथा अवधीरितं तिरस्कृतं विबुधानां देवानां आचार्यस्य गुरोः विचार्यं विचारार्हं कार्यसाहित्यं कार्यसमूहः यैस्ते, कुलामात्याः=कुलक्रमागत मन्त्रिणः, अभूवन्=अभवन्।

तेषां सितवर्मणः सुमतिसत्यवर्माणौ, धर्मपालस्य सुमन्त्रसुमित्रकामपालाः, पद्मोद्भवस्य सुश्रुतरत्नोद्भवाविति तनयाः समभूवन्।

हिन्दी अर्थ—उन मन्त्रियों में सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा नामक, धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल नामक, पद्मोद्भव के सुश्रुत और रत्नोद्भव नामक पुत्र हुए।

संस्कृतव्याख्या:—तेषाम्=मन्त्रिणां, तनयाः=पुत्राः समभूवन=अभवन्।

टिप्पणी —'तेषाम्' यतश्चनिर्धारणम्' इस सूत्र से निर्धारण में षष्ठी विभक्ति हुई है।
'बुद्धिर्मनीषाधिषणा' इत्यमरः

तेषु धर्मशीलः सत्यवर्मा संसारासारतां बुद्ध्वा तीर्थयात्राभिलाषी देशान्तरमगमत्।

हिन्दी अर्थ —उन पुत्रों में धर्मशील सत्यवर्मा संसार को असार समझकर तीर्थयात्रा करने की इच्छा से दूसरे देश को चला गया।

संस्कृतव्याख्या :—तेषु=पुत्रेषु, धर्मशीलः=धर्मस्वभावः धार्मिक इति भावः, संसारासारताम्=संसारस्य जगतः असारतां विनश्वरतां, बुद्ध्वा=ज्ञात्वा, तीर्थयात्राभिलाषीः तीर्थाटनेच्छुकः देशान्तरम्=अन्यदेशम्, अगमत्=अगच्छत्।

विटनटवारनारीपरायणो दुर्विनीतः कामपालो जनकाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य भुवं बभ्राम।

हिन्दी अर्थ —विट, नट तथा वेश्याओं में अनुरक्त होता हुआ धृष्ट कामपाल पिता की तथा बड़े भाई की आज्ञा का अतिक्रमण कर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा।

संस्कृतव्याख्या :—विटनटवारनारीपरायणः = विटेषुचधूर्तेषु च नटेषु च शैलूषेषु च वारनारीषु च वेश्यासु च परायणः अनुरक्तः इति, दुर्विनीतः=अविनीतः, जनकाग्रजन्मनोः=जनकस्य पितुः अग्रजन्मनश्च= ज्येष्ठभ्रातुश्च, शासनम्=आज्ञाम्, अतिक्रम्य = तिरस्कृत्य, भुवम्= पृथ्वीम्, बभ्राम्=भ्रमणं चकार।

टिप्पणी—विटोऽद्रौ लवणे षिङ्गे मूषिकेखदिरेऽपि च' इति मेदिनी, बभ्राम 'भ्रमु अनवस्थाने' धातु का लिट् लकार का रूप है।

रत्नोद्भवोऽपि वाणिज्यनिपुणतया पारावारतरणमकरोत्।

हिन्दी अर्थ—रत्नोद्भव व्यापारकार्य में दक्ष होने से समुद्र पार चला गया।

संस्कृतव्याख्या :—वाणिज्यनिपुणतया = व्यापारकर्मचातुर्येण, पारावारतरणम्=सागरतरणम्, अकरोत्=कृतवानित्यर्थः।

इतरे मन्त्रिसूनवः पुरन्दरपुरातिथिषु पितृषु यथापूर्वमन्वतिष्ठन्।

हिन्दी अर्थ—अन्य मन्त्रियों के पुत्रों ने अपने पिताओं की मृत्यु के पश्चात् उन्हीं के स्थान पर कार्य ग्रहण किया।

संस्कृतव्याख्या :—इतरे = अपरे, मन्त्रिसूनवः = अमात्यात्मजाः, पुरन्दरपुरातिथिषु = पुरन्दरपुरस्य इन्द्रनगरस्य अतिथिषु प्राघुणिकेषु मृतेषु इतिभावः। पितृषु = जनकेषु, यथापूर्वम् = क्रमानुसारं, अन्वतिष्ठन् = मन्त्रित्वमकुर्वन्।

टिप्पणी—'पारावारः सरित्पतिः' इत्यमरः।

राजहंसस्य युद्ध वर्णनम्—

ततः कदाचिन्नानाविधमहदायुध नैपुण्य रचितागण्यजन्य राजन्य मौलिपालिनिहितनिशितसायको मगधनायको मालवेश्वरं प्रत्यग्रसङ्ग्रामघस्मरं समुत्कट मानसारं मानसारं प्रति सहेलं न्यक्कृतजलधि निर्घोषाहङ्कारेण भेरीझाङ्कारेण हठिकाकर्णनाक्रान्तभयचण्डिमानं दिग्दन्तावलयवलयं विघूर्णयन्निजभरनमन्मेदिनीभरेणायस्तभुजगराजमस्तकबलेन चतुरङ्गबलेन संयुतः सङ्ग्रामाभिलाषेण रोषेण महताविष्टो निर्ययौ।

हिन्दी अर्थ—इसके पश्चात् एकबार विभिन्न प्रकार के अस्त्रों (के संचालन में) चातुर्य से असंख्य युद्धों में राजाओं के मस्तकों पर तीक्ष्ण बाण चलाने वाले मगध के राजा राजहंस, नूतन युद्ध में शत्रुओं के नाशक (भक्षक) अत्यन्त अभिमानी मालवा के अधिपति मानसार के ऊपर अवज्ञापूर्वक समुद्र के शब्द करने के अहंकार को तिरस्कृत करने वाले, नगाड़ों के शब्द को हठात् सुनने के कारण भयभीत दिशाओं के हस्तियों को कम्पित करने वाले, अपने भार से दबी हुई पृथ्वी के भार से शेषनाग के मस्तक को खिन्न करने वाली चतुरङ्गिणी (हाथी, घोड़ा, पैदल एवं रथ) सेना से युक्त होकर बड़े क्रोध के साथ संग्राम करने की इच्छा से निकल पड़ा।

संस्कृतव्याख्या :—ततः = तदनन्तरम्, कदाचित् = एकदेतिभावः, नानाविधमहदायुध नैपुण्य रचितागण्य जन्यराजन्य मौलिपालिनिहित निशित सायकः = नानाविधानि विभिन्नानि महन्ति आयुधानि अस्त्राणि तेषु नैपुण्यं निपुणता तया रचितानि कृतानि अगण्यानि असंख्यानि जन्यानि युद्धानि तेषु राजन्यानां क्षत्रियाणां नृपाणां वा मौलीनां किरीटानां पालिषु प्रान्तप्रदेशेषु

निहिताः प्रक्षिप्ताः निशिताः तीक्ष्णाः सायकाः बाणाः येन, इत्थंभूतः मगधनायकः = मगधेश्वरः, मालवेश्वरम् = मालवाधिपतिम्, प्रत्यग्रसंग्रामघस्मरम् = प्रत्यग्रे नूतने संग्रामे युद्धे घस्मरः भक्षकः तम्, समुत्कटमानसारम् = समुत्कटः अत्युत्कटः मान एव सारो स्थिरांशः यस्य तम् अथवा समुत्कटो मानः दर्पः सारो बलं च यस्य तम्, मानसारम् = तन्नामकं राजानम्, सहेलम = सलीलम्, न्यक्कृत जलधि निर्घोषाहङ्कारेण = न्यक्कृतः तिरस्कृतः जलधेः सागरस्य निर्घोष विषयेऽहंकारोऽभिमानो येन इत्थंभूतेन भेरीझंकारेण, भेरीझंकारेण = दुन्दुभिशब्देन, हठिका कर्णनाक्रान्तभयचण्डिमानम् = हठिकाकर्णनात् सहसाश्रवणात् आक्रान्तः प्राप्तः भयस्य भीतेः चण्डिमा चण्डत्वं महाभयमित्यर्थः यं तम्, दिग्दन्तावलय वलयम् = दिग्दन्तावलानां दिग्गजानां वलयं मण्डलम् वृन्दम्वा, विघूर्णयन् = चालयन, निजभरनमन्मेदिनीभरेण = निजभरेण स्वकीयभारेण नमन्ती अधोगच्छन्ती या मेदिनी, पृथ्वी तस्याः भरेण भारेण, आयस्त भुजगराजमस्तकवलेन = आयस्तं पीडितं भुजगराजस्य वासुकेः मस्तकवलं शिरसाधारणसामर्थ्यं येनेत्थंभूतेन, चतुरंगवलेन = गजाश्वरथ पदातिरूपेण चतुर्विध सैन्येन, संयुतः = सहितः, संग्रामाभिलाषेण = युद्धेच्छया, महता = अतिशयेन, रोषेण = क्रोधेन, आविष्टः = व्याप्तः, निर्ययौ = निर्जगाम ।

टिप्पणी—असम्बन्ध में सम्बन्धरूपातिशयोक्ति अलंकार अनुप्रास स्पष्ट है ही । अतः संसृष्टि अलंकार परस्पर निरपेक्ष होने के कारण हो गया है । दन्तावल = 'दन्तशिखात्संज्ञायाम्' इस सूत्र से वलच प्रत्यय हो जाता है । घस्मर = 'सृघस्यदः क्मरच । इस सूत्र से क्मरच प्रत्यय हो जाता है । "युद्धमायोधनं जन्यम्" कोषः "मौलिः किरीटेधम्मिलेचूडायामनपुंसकम्" इति मेदिनी । "पालिः कर्णलतायां स्यात् प्रदेशे पंक्तिचिन्ह्योः" इत्यजयः । 'दन्तीदन्तावलो हस्ती' इत्यमरः ।

मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रह सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखी भूय भूयो निर्जगाम !

हिन्दी अर्थ – मालवेश्वर भी अनेक हाथियों के समुदाय से युक्त हो कर शरीरधारी युद्ध के तुल्य आग्रहपूर्वक (युद्ध के लिए) पुनः निकल पड़ा ।

संस्कृतव्याख्या :—मालवनाथः = मालवाधिपतिः, अनेकानेकपयूथ अनेके बहवः ये अनेकपाः हस्तिनः तेषां यूथं समूहः तेन सनाथः युक्तः,

विग्रहः = संग्रामः, सविग्रह इव = शरीरधारीव, साग्रहः = आग्रहयुक्तः, अभिमुखीभूय = सम्मुखीभूत्वा, भूयः = पुनः, निर्जगाम = निर्ययौ।

टिप्पणी—उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'युद्धे देहे च विग्रहः' इति कोश।

तयोरथ रथतुरगखुरक्षुण्ण क्षोणीसमुद्भूते करिघटाकटस्रवन्मदधाराधौतमूले नव्यवल्लभवरणागतदिव्यकन्यका जनजवनिकां पटमण्डप इव वियत्तालव्याकुले धूलीपटले दिविषदध्वनि धिक्कृतान्यध्वनिपटहध्वानवधिरिताशेषदिगन्तरालं शस्त्राशस्त्रि हस्ताहस्ति परस्पराभिहतसैन्यं जन्यमजनि।

हिन्दी अर्थ—इसके पश्चात् उन दोनों का युद्ध प्रारम्भ हो गया। उसमें रथ के पहियों तथा घोड़ों के खुरों से मर्दित पृथ्वी से उत्पन्न, हस्ती समुदाय के गण्डस्थलों से बहने वाली मद धाराओं से सिक्त, (धूलिसमूह) नूतन पतियों के वरण के लिए दिव्यकन्यकाओं के पटमण्डप के समान होकर आकाश में फैल गया, दूसरे शब्दों को तिरस्कृत करने वाले पटह शब्द के द्वारा सम्पूर्ण दिशाओं को बधिर बनाने वाला, तथा शस्त्रों से शस्त्र एवं हाथों से हाथ भिड़ाकर परस्पर (योधागण) युद्ध होने लगा।

संस्कृतव्याख्या :—अथ = तदनन्तरम्, तयोः = मालवराजमगधराजयोः, रथतुरगखुरक्षुण्ण क्षोणी समुद्भूते = रथैः स्यन्दनचक्रैरित्यर्थः तुरगाणां घोटकानां खुरैः शफैः क्षुण्णायाः चूर्णितायाः मर्दितायाः वा क्षोण्याः समुद्भूते समुत्पन्ने, करिघटाकटस्रवन्मदधाराधौतमूले = करिणां गजानां घटाः समूहाः तासां कटेभ्यः गण्डेभ्यः स्रवन्त्यः प्रवहन्त्यः या मदधारा दानधाराः ताभिः धौतं प्रक्षालितं मूलं अधः प्रदेशः यस्य तस्मिन्, नव्यवल्लभवरणागतदिव्यकन्यका जन जवनिका पटमण्डप इव = नव्यानां अभिनवानां वल्लभानां प्रियाणां वरणाय पतित्वेन स्वीकरणाय आगतः समागतः यः दिव्यकन्याकाजनः अप्सरः समुदायः तस्य जवनिका तिरस्करिणी तथा युक्तः पटमण्डपः पटवास इव तस्मिन्, वियत्तलव्याकुले = वियतः गगनस्य तले अधः व्याकुले व्याप्ते, धूलीपटले = पांशुपटले, दिविषदध्वनि = दिवि सीदन्तीति दिविषिदः देवाः तेषां अध्वनि-मार्गे, धिक्कृतान्यध्वनि पटह ध्वान वधिरिता शेष दिगन्तरालम् = धिक्कृताः न्यक्कृता अन्यध्वनयः अन्येषां वा ध्वनयः येन तादृशेन पटहध्वानेन ढक्काध्वनिना बधिरितं बधिरी-

कृतं दिगन्तरालं दिग्मध्यभागः यस्मिन् तत् (युद्धस्य विशेषणम्) शस्त्राशस्त्रि=शस्त्रैः शस्त्रैश्च प्रहृत्य यद्युद्धं प्रवृत्तमिति, (योद्धारः परस्परं शस्त्राणि क्षिप्त्वा युद्धं कुर्वन्तीतिभावः) हस्ताहस्ति=हस्तैः हस्तैश्च प्रहृत्य प्रवृत्तं युद्धम् तत्, परस्पराभिहत सैन्यम्=परस्परस्य अन्योन्यस्य अभिहतं आक्रान्तं सैन्यं सेना यस्मिन् तत् जन्यम्=युद्धम्, अजनि=अभवत् ।

टिप्पणी—'अजनि' जनी प्रादुर्भावे लुङ् लकार का रूप है । 'दीप जन बुध पूरितायि—इस सूत्र से विकल्प से चिण् होगा 'जनिवध्योश्च' इससे वृद्धि नहीं होगी ।

शस्त्राशस्त्रि तथा हस्ताहस्ति यहाँ पर शस्त्रैः शस्त्रैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तमिति विग्रहे 'तत्र तेनेदमिति सरूपे' इस सूत्र से बहुव्रीहि समास तथा 'इच्कर्मव्यतिहारे' इस सूत्र से समासान्त इच् होकर 'अन्येषामपिदृश्यते' इस सूत्र से दीर्घ हो जायेगा । उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

'करटः स्यात्कटो गण्डः' इति हलायुधः । 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यः' 'वल्लभो दयितोऽध्यक्षे सलक्षणतुरंगमे' प्रतिसीरा जवनिका स्यात्तिरस्करिणी 'च सा' इत्यमरः ।

तत्र मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलं मालवराजं जीवग्राहमभिगृह्य कृपालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास । ततः सः रत्नाकरमेखलाभिलामनन्यशासनां शासदनपत्यतया नारायणं सकललोकैककारणं निरन्तरमर्चयामास ।

हिन्दी अर्थ—उस युद्ध में मगधराज राजहंस ने मालवराज मानसार की सम्पूर्ण सेना नष्ट करके तथा उसे सजीव पकड़ करके पुनः कृपालुतावश उसे उसी के राज्य में स्थापित कर दिया अर्थात् उसका राज्य पुनः लौटा दिया इसके पश्चात् मगधराज राजहंस समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर शासन करते हुए निःसन्तान होने के कारण सम्पूर्ण लोकों के एकमात्र कारण नारायण की पूजा करने लगे ।

संस्कृतव्याख्या :—तत्र = संग्रामे, मगधराजः = मगधाधिपतिः राजहंसः, प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलम्=प्रक्षीणं विनष्टं सकलं समग्रं सैन्यमण्डलं सेनावृन्दं यस्य तम्, मालवराजम्=मालवदेशाधिपतिं मानसारम्,

जीवग्राहम्=जीवन्तम्, अभिगृह्य=धृत्वा, कृपालुतया=दयावशेन पुनरपि= भूयोऽपि, स्वराज्ये=शासने, प्रतिष्ठापयामास=स्थापयामास। ततः= तदनन्तरम्, सः=मगधराजो राजहंसः, रत्नाकरमेखलाम्, रत्नाकरः सागरः एव मेखला काञ्ची रशना वा यस्याः साताम्, इलाम्=पृथ्वीम्, अनन्य शासनाम्=न अन्यस्य अपरस्य शासनं आदेशः यस्यां ताम्। शासत्=शासनं कुर्वन्; अनपत्यतया=सन्तानाभावत्वेन, सकललोकैक-कारणम्=सकलानां सम्पूर्णानां लोकानां भुवनानां एक कारणं मूलकारणम्, नारायणम्=भगवन्तं विष्णुम्। निरन्तरम्=सततम्, अर्चयामास= पूजयामास।

टिप्पणी—जीवग्राहम्=जीवतीति जीवः इस स्थिति में 'इगुपधज्ञा प्रीकिरः कः' इससे क होने के पश्चात् 'समूलाकृतजीवेषु हन् कृञ्ग्रहः' इस सूत्र से णमुल् हो जायेगा। जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः। 'गौरिलाकुम्भिनी क्षमा' इत्यमरः।

राज्या गर्भधारणवर्णनम्—

अथ कदाचित्तदग्रमहिषी 'देवि, देवेन कल्पवल्लीफलमाप्नुहि' इति प्रभातसमये सुस्वप्नमालोकितवती। सा तदा दयितमनोरथ-पुष्पभूतं गर्भमाधत्त। राजापि सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः सुहृन्नृप मण्डलं समाहूय। निजसम्पन्मनोरथानुरूपं देव्याः सीमन्तोत्सवं व्यधत्त।

हिन्दी अर्थ—इसके पश्चात् मगधराज की बड़ी रानी ने प्रातः एक सुन्दर स्वप्न देखा जिसमें उनसे किसी ने कहा-हे देवि ! राजा के द्वारा प्रदत्त या राजा के साथ [सहित] यह कल्पवृक्ष का फल आप ग्रहण करें। उस रानी ने प्रिय के मनोरथ स्वरूप पुष्प के समान गर्भ को धारण किया। अपने ऐश्वर्य से इन्द्र के वैभव को तिरस्कृत करने वाले उस राजा ने मित्र-भूत नृपसमुदाय को बुलाकर अपनी सम्पत्ति एवं मनोरथ के अनुरूप रानी का 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार किया।

संस्कृतव्याख्याः—अथ=नारायणपूजानन्तरम्, अग्रमहिषी=पट्टम-हिषी, देवि=राज्ञि, देवेन=राज्ञा, कल्पवल्लीफलम्=कल्पलताफलम्, आप्नुहि=प्राप्नुहि, प्रभातसमये=प्रातःकाले: सुस्वप्नम्, आलोकितवती=

दृष्टवती, सा=राज्ञी, तदा=तदानीम्, दयितमनोरथपुष्पभूतम्=दयितस्य प्रियस्य यः मनोरथः पुत्ररूपः कामना तस्य पुष्पमिव कुसुममिव भूतं गर्भं, आधत्त=धृतवती, राजापि=नृपोऽपि, सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः=सम्पदा समृद्धया ऐश्वर्येण वा न्यक्कृतः तिरस्कृतः अधरीकृतो वा आखण्डलः इन्द्रो येन सः, सुहृन्नृपमण्डलम्=सुहृदां मित्रभूतानां नृपाणां राज्ञां मण्डलं समूहं अथवा सुहृदश्च नृपाश्च (द्वन्द्वसमासः) तेषां मण्डलम्, समाहूय=आह्वानं कृत्वा, निजसम्पन्मनोरथानुरूपम्=निजस्य स्वकीयस्य सम्पदः समृद्धेः मनोरथस्य च अभिलाषस्य च अनुरूपं सदृशम्, देव्याः राज्ञ्याः, सीमन्तोत्सवम्=केशप्रसाधन रूपसंस्कारविशेषम्, व्यधत्त=अकरोत् ।

टिप्पणी—"'सीमन्तोत्सव' एक संस्कारविशेष जिसमें केशप्रसाधन किया जाता है। आश्वलायन के आधार पर यह संस्कार गर्भ के चतुर्थ मास में किया जाता है। तथा मनु और याज्ञवल्क्य के आधार पर छठें या आठवें मास में किया जाता है। प्रातःकालिक स्वप्न सत्य फल वाले होते हैं। अग्निपु० २२८।१६,१७ के अनुसार १० दिन में फल देते हैं। अवितथ फलाश्च प्रायो निशावसान समय दृष्टा भवन्ति स्वप्नाः (कादम्बरी पृ० २०३, १९६१, चन्द्रकला विद्योतिनी टीका)।

'अधत्त' डुधाञ्धारणपोषणयोः' इस धातु से लङ् लकार का आत्मनेपद का रूप है। 'आखण्डलः तुराषाट्' इति हलायुधः।

एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासिनासीनो गुणै-रहीनो ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि-"देव! देवसन्द-र्शनलाल समानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशम-ध्यास्ते" इति। तनुज्ञादेव तेन स संयमी नृपसमीपमनायि।

हिन्दी अर्थ—एक दिन सभी गुणों से युक्त मगधनरेश अपने हितैषी मित्रों, मन्त्रियों और पुरोहितों से युक्त, होकर सभा में सिंहासन पर विरा-जमान थे। उस समय हाथ जोड़कर प्रणाम करके द्वारपाल ने कहा "राजन्! आपके द्वारा पूजा के योग्य आपको देखने का इच्छुक कोई संन्यासी दरवाजे पर खड़ा है। राजा की आज्ञा प्राप्तकर द्वारपाल उस संन्यासी को राजा के समीप लाया।

संस्कृतव्याख्या :—एकदा = एकस्मिन् समये, हितैः = हितकारिभिः, सुहृन्मन्त्रि पुरोहितैः = सुहृदश्च मित्राणि च मन्त्रिणश्च अमात्याश्च पुरोहिताश्च कुलपूज्याश्च तैः, गुणैः = सद्गुणैः अहीन = सहितः इत्यर्थः, ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना = ललाटतटे भालप्रदेशे न्यस्तः रक्षितः अञ्जलिः करसंपुटं येन तेन इत्थंभूतेन द्वारपालेन = प्रतीहारेण, व्यज्ञापि = कथितः, देव = भो महाराज ! देवसन्दर्शन लाल समानसः = देवस्य भवतः सन्दर्शने अवलोकने लालसं साभिलाषं मानसं मनः यस्यसः, देवेन = भवता, विरच्यार्चनार्हः = विरच्या कर्तव्या या अर्चना पूजा तां अर्हतीति, यतिः = संन्यासी भिक्षुर्वा, द्वारदेशम् = द्वारस्थानम्, अध्यास्ते = तिष्ठतीतिभावः, तदनुज्ञातेन = राजाज्ञया आदिष्टेन, तेन = द्वारपालेन, सः = पूर्वोक्तः, संयमी = यतिः, नृपसमीपम् = नृपस्य राज्ञः समीपम् सकाशम्, अनायि = नीतः ।

टिप्पणी—'द्वारदेशम्' यहाँ पर "अधिशीङ्स्थासां कर्म" इस सूत्र से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया हुई है । 'व्यज्ञापि' ज्ञा अववोधने' इस धातु से णिजन्त हो जाने से कर्म में लुङ् लकार हुआ है ।

भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचारभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं मन्दहासमभाषत—"ननु तापस ! देशं सापदेशं भ्रमन् भवांस्तत्र तत्र भवदभिज्ञातं कथयतु" इति ।

संन्यासिनः सन्देश कथनम्—

तेनाभाषि भूभ्रमणबलिना प्राञ्जलिना—"देव! शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेषं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्त जातंविदित्वा प्रत्यागमम् ।

हिन्दी अर्थ—राजा ने उसे आता हुआ देखकर और उसे अपना गुप्तचर जान करके अपने सभी नौकर समुदाय को हटाकर मन्त्रियों से युक्त, मन्द मुसकान के साथ प्रणाम करते हुए इस दूत से पूछा—हे तापस! इस कपटवेश युक्त देश में घूमते हुए जो आपने जाना है उसे आप कहें'। पृथ्वी पर भ्रमण करने में समर्थ, हाथ जोड़कर उस संन्यासी ने कहा "हे राजन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके इस निर्दोष वेश को धारण करके मैं मालव नरेश के नगर में प्रविष्ट हुआ और वहाँ गुप्तरूप से रहता हुआ उस राजा के सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकरके लौटा हूँ ।

संस्कृतव्याख्याः—भूपतिः=नृपो राजहंसः, आयान्तम=समागच्छन्तं, तम=यतिम्, विलोक्य=अवलोक्य, सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचारभावः=सम्यक् सुष्ठु ज्ञातः अवगतः तदीयः तत्सम्बन्धी गूढः गुप्त प्रच्छन्नो वा चारभावः गुप्तचरत्वं येन सः, निखिलम्=सम्पूर्णम्, अनुचरनिकरम्=अनुचराणां सेवकानां निकरं समूहं, विसृत्य=त्यक्त्वा, मन्त्रिजनसमेतः=मन्त्रिजनैः अमात्यवृन्दैः समेतः युक्तः, प्रणतम्=कृतनमस्कारं, एनम्=संन्यासिनम्, मन्दहासम्=सहासं, अभापत=अवोचत, तापस=भो संन्यासिन्, सापदेशम्=सव्याजम्, देशम्=मालवदेशम्, भ्रमन्=विचरन्, भवान्=त्वम् तत्र तत्र=तेषु तेषु स्थानेषु, भवदभिज्ञातम्,=भवता त्वया अभिज्ञातं अवगतं, कथयतु=निवेदयतु, भूभ्रमणवलिना=भुवः पृथिव्याः भ्रमणे विहरणे बलिः समर्थः तेन, प्राञ्जलिना=बद्धाञ्जलिना, तेन=यतिना, अभाषि=कथितम्, देव! भो राजन्, शिरसि=मस्तके, देवस्य=भवतः, आज्ञाम्=आदेशम्. आदाय=अङ्गीकृत्य, निर्दोषम्=दोषरहितम्, वेषम्=भिक्षुरूपम् स्वीकृत्य=धृत्वा, मालवेन्द्रनगरम्=मालवनरेश पत्तनम्, प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, तत्र=तस्मिन् स्थाने, गूढतरम्=अतिशयेन गूढमित्यर्थः, वर्तमानः =विराजमानः सन्, तस्यराज्ञः=मालवनरेशस्य, समस्तम्=सम्पूर्णम्, उदन्तजातम्=वृत्तान्तवृन्दं, विदित्वा=ज्ञात्वा, प्रत्यागमम्=प्रत्यागच्छम्,

टिप्पणी—'अभाषि' 'भाष व्यक्तायां वाचि' इस धातु से कर्म में लुङ् लकार है। 'गूढतरम्' द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' इस से तरप् प्रत्यय हो जाता है। 'वर्तमानः' 'वृतु वर्तने' धातु से कर्ता में शानच् हुआ है। ''वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः उदान्तः स्यात्' इत्यमरः।

मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये संपराये भवतः पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वरं समाराध्य तपः प्रभावसन्तुष्टादस्मादेकवीरारातिघ्नीं भयदां गदा लब्ध्वाऽऽत्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमाना–भवन्तमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते। ततः परं देव एव प्रमाणम् इति।

हिन्दी अर्थ—(उसने बताया) अभिमानी मानसार राजा युद्ध में अपने सैनिकों के नाश से तथा आप से पराजय प्राप्त करके लज्जित होता हुआ दीन भाव से युक्त महाकाल (उज्जैन का एक मन्दिर जिसमें भगवान शंकर की स्थापना है। निवासी तथा पार्वती के साथ विहार करने वाले, अवि-

नाशी भगवान् शंकर की आराधना करके, तपस्या के प्रभाव से संतुष्ट उन्हीं भगवान् शंकर से एक प्रधान वीर को मारने वाली भयप्रदा गदा को प्राप्त करके, अपने को अप्रतिम योद्धा मानता हुआ अभिमान के साथ आपसे लड़ने के लिए प्रयत्नशील है। इस विषय में आप ही प्रमाण हैं अर्थात् जैसा उचित समझें आप विचार कर लेवें।

संस्कृतव्याख्या :-मानी=स्वाभिमानी, मानसारः=तन्नामकःमालवनरेशः, स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये=स्वसैनिकानां निजवीराणांआयुष्मत्ता जीवितावधिः तस्याः अन्तराये विघ्नस्वरूपे, सम्पराये=युद्धे, भवतः=त्वत्तः, पराजयम्=पराभवम्, अनुभूय=लब्ध्वेत्यर्थः, वैलक्ष्यलक्ष्यहृदय=वैलक्ष्यस्य दैन्यस्य दीनतायाः वा लक्ष्यं विषयीभूतं हृदयं चित्तं यस्य सः अथवा वैलक्ष्येण दैन्येन लक्ष्यं समाक्रान्तं हृदयं यस्य सः, वीतदयः=वीता विनष्टा दया यस्य सः, महाकालनिवसिनम्=महाकालवास्तव्यम्, कालीविलासिनम्=पार्वतीपतिम्, अनश्वरम् = अविनश्वम्, महेश्वरम्=महादेवम्, समाराध्य=सम्पूज्य, तपः प्रभावसन्तुष्टात्=तपसः तपश्चरणस्य प्रभावेण सामर्थ्येन सन्तुष्टः परितुष्टः तस्मात्, एकवीरारातिघ्नीम्=एकश्चासौ वीर एकवीरः स चासौ आरातिः शत्रुः तं हन्तीति तम्, एक शब्दस्यार्थः एक संख्यकः श्रेष्ठः प्रधानो वा, भयदां=भीतिप्रदां, गदाम्=आयुधविशेषम्, लब्ध्वा=प्राप्य, अप्रतिभटम्=नास्ति प्रतिभटः यस्य तं अप्रतिद्वन्द्विनमित्यर्थः, अद्वितीयमिति भावः, मन्यमानः=आत्मानं मन्यमानः, महाभिमानः =महान् अत्यधिकः अभिमानः अहंकार यस्य सः, अभियोक्तुम्=अभिषेगयितुम्, उद्युङ्क्ते=प्रयतते, ततः परम्=इत्थं विचार्य, देव एव=भवान् एव, प्रमाणम्=प्रमाणस्वरूपम्।

टिप्पणी—उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी' इति कोषः, 'सम्परायः समीकं साम्परायिकम् इति हैमः।

अमात्य कृत निश्चयः—

तदालोच्य निश्चिततत्कृत्यैरमात्यै राजा विज्ञापितोऽभूत् 'देव, निरुपायेन देवसहायेन योद्धुमरातिरायाति। तस्मादस्माकं युद्धं साम्प्रतम साम्प्रतम्। सहसा दुर्गसंश्रयः कार्यः" इति।

राजहंसस्य पुनराहवे प्रवृत्तिः—

तैर्बहुधा विज्ञापितोऽप्यखर्वेण गर्वेण विराजमानो राजा तद् वाक्यमकृत्यमित्यनादृत्य प्रतियोद्धुमना बभूव। शितिकण्ठदत्तशक्तिसारो मानसारो योद्धुमनसामग्रीभूय सामग्रीसमेतोऽक्लेशं मगधदेशं प्रविवेश।

हिन्दी अर्थ—यह श्रवण करके उसके मन्त्रियों ने विचार विमर्श करके राजा से कहा 'हे राजन्! जिसका कोई प्रतिकार नहीं है इस प्रकार की देव (महादेव) की सहायता से शत्रु युद्ध करने आ रहा है तो इस समय हम लोगों का युद्ध करना अनुचित होगा। अतः ऐसे समय में हमलोगों को दुर्ग का आश्रय लेना चाहिए। मन्त्रियों के द्वारा विभिन्न प्रकार से समझाने पर भी अत्यधिक गर्व के साथ उनके वाक्यों को अकरणीय समझकर अनादर करके युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। शंकर द्वारा प्राप्त शक्ति से वलप्राप्त मानसार युद्ध करने की इच्छा वालों में अग्रगण्य, सामग्री सहित बिना क्लेश के मगधदेश में प्रवेश किया।

संस्कृतव्याख्या :—तदालोच्य=तच्छ्रुत्वेतिभावः, निश्चिततत्कृत्यैः=निश्चितं निर्णीतं तत्कृत्यं तत्समयोचितं राजकृत्यं यैस्तैः, राजा=नृपः, विज्ञापितः=निवेदितः, अभूत=अभवत्, देव=भो राजन्! निरुपायेन=नास्ति उपायः प्रतीकारः यस्य तेन, देवसहायेन=शंकरसाहाय्येन, योद्धुम्=युद्धं कर्तुम्, आरातिः=शत्रुः, आयाति=समागच्छति। तस्मात्=तस्मात् कारणात्, अस्माकं, युद्धम्=समरः, साम्प्रतम्=इदानीम्, असाम्प्रम्=अनुचितम्, सहसा=शीघ्रम्, दुर्गसंश्रयः=दुर्गप्रवेशः, कार्यः=कर्तव्यः, तैः=मन्त्रिभिः, बहुधा=बहुप्रकारेण, विज्ञापितोऽपि=निवेदितोऽपि, अखर्वेण=न खर्वः इति अखर्वः तेन महतेत्यर्थः, गर्वेण=दर्पेण, विराजमानः=शोभमानः, राजा=मगधनरेशः, तद्वाक्यम्=मन्त्रिवचनम्, अकृत्यम्=अकरणीयम्, इति=इत्थं, अनादृत्य=अस्वीकृत्य, अनादरं विधाय वा, प्रतियोद्धुमना=युद्धेच्छुकः, बभूव=अभवत्। शितिकण्ठदत्तशक्तिसारः=शितिकण्ठः शंकरः तेन दत्ता समर्पिता या शक्तिः आयुधविशेषः स एव सारः बलं यस्य सः, मानसारः=तन्नामकः मालवाधिपतिः, योद्धुमनसाम्=युद्धेच्छुकानाम्, अग्रीभूय=पुरोभूत्वा, सामग्रीसमेतः=आयुधादि युद्धोपकरणोपेतः, अक्लेशम्=क्लेशं विनैव, प्रविवेश=प्रवेशं अकरोत्।

टिप्पणी—'खर्वो ह्रस्वश्च वामनः' इत्यमरः।

'विराजमानः' वि + राजृ दीप्तौ' धातु से शानच् प्रत्यय हो जाता है।

तदा तदाकर्ण्य मन्त्रिणो भूमहेन्द्रं मगधेन्द्रं कथंचिदनुनीय रिपुभिरसाध्ये विन्ध्याटवीमध्येऽवरोधान् मूलबलरक्षितान् निवेशयामासुः। राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिक्रुषं द्विषं रुरोध। परस्परबद्धवैरयोरेतयोः शूरयोस्तदा तदा लोकनकुतूहलागतगगनचराश्चर्यकारणे रणे वर्तमाने जयाकांक्षी मालवदेशरक्षी विविधायुधस्थैर्यचर्याञ्चित समरतुलितामरेश्वरस्य मगधेश्वरस्य पुरा पुरारातिदत्तां गदां प्राहिणोत्। निशितशरनिकर शकलीकृतापि सा पशुपतिशासनस्यावन्ध्यतया सूतं निहत्य रथस्थं राजानं मूर्च्छितमकार्षीत्।

राजहंसस्य पराजयो वनवासश्च—

ततो वीतप्रग्रहा अक्षतविग्रहा वाहा रथमादाय दैवगत्याऽन्तःपुरशरण्यं महारण्यं प्राविशन्।

हिन्दी अर्थ—उस समय यह सुनकर मन्त्रियों ने महीपति राजहंस को समझा बुझाकर शत्रुओं के द्वारा अगम्य विन्ध्याटवी में मूलसेवा के द्वारा रक्षित अन्तःपुर की स्त्रियों को भिजवा दिया। राजहंस उत्कृष्ट और दीनभाव से रहित सेना को लेकर तीव्रगति से निकल करके अत्यन्त क्रुद्ध शत्रु को घेर लिया। परस्पर द्रोह रखने वाले उन दोनों (राजहंस और मानसार) के युद्ध को देखने के कुतूहल से आये हुए आकाशचारी (देवगन्धर्वादि) के लिए आश्चर्य का कारण हो गया। इस प्रकार युद्ध में विजय की अभिलाषा करने वाले मालवनरेश ने विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण तथा युद्ध में इन्द्र की उपमा वाले मगधनरेश के ऊपर पहले ही शंकर जी द्वारा प्रदत्त गदा का प्रहार किया। मगधराज के द्वारा तीक्ष्ण वाण समुदाय के द्वारा खण्ड-खण्ड की जाने पर भी भगवान् शंकर के वाक्य की अव्यर्थता सिद्ध करने के लिए सारथी को मारकर रथस्थित राजा राजहंस को मूच्छित कर दिया। इसके पश्चात् लगाम रहित तथा विना चोट वाले घोड़ों ने रथ को लेकर सौभाग्य से अन्तःपुर की स्त्रियों के आश्रयभूत उस महावन में पहुंचा दिया।

संस्कृतव्याख्या :—तदा = तदानीम्, तदाकर्ण्य = तन्निशम्य, मन्त्रिणः = अमात्याः, भूमहेन्द्रम् = भुवि पृथिव्यां महेन्द्रः सुरेन्द्रः तमिव अथवा भुवः महेन्द्रः स्वामीत्यर्थः तम् महीपतिमिति भावः, मगधेन्द्रम् = मगधस्वामिनम् राजहंसम्, कथंचिद् = येन केन प्रकारेण, अनुनीय = प्रणीय, प्रार्थ्यंवा, रिपुभिः = शत्रुभिः, असाध्ये = अगम्ये, विन्ध्याटवीमध्ये = विन्ध्यवने, अवरोधान् = राजदारान्, मूलबलरक्षितान् = मूलबलेन प्रधानसेनया रक्षितान् सुरक्षितान् निवेशयामासः = स्थापितवन्तः, स्थापयामासुर्वा । राजहंसस्तु = तन्नामको नरेशस्तु, प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतः = वीतं गतं समाप्तं वा दैन्यं कार्पण्यं यस्मात् तत्, प्रशस्तञ्च अत्युत्कृष्टं च वीतदैन्यञ्च यत सैन्यं बलं तेन समेतः युक्तः, तीव्रगत्या = द्रुतगत्या, निर्गत्य-वहिरागत्य, अधिकरुषम् = अधिका रुट् यस्य तं अतिक्रुद्धमित्यर्थः द्विषम् = शत्रुम्, रुरोध = अवरोधं चकार ।

परस्परबद्धवैरयोः = परस्परं मिथः बद्धं कृतं वैरं द्रोहभावः याभ्यांतयोः, एतयोः शूरयोः = मगधराजमालवराजयोः, राजहंसमानसारयोः वेतिभावः, तदा = तदानीम्, तदालोकनकुतूहलागतगगनचराश्चर्यकारणे = तस्य युद्धस्य तयोर्वा आलोकने दर्शने यत्कुतूहलं कौतुकं तदर्थं आगताः समागताः ये गगनचराः सिद्धगन्धर्वदेवादयः आकाशचारिणः तेषां आश्चर्यस्य चाकचिक्यस्य कारणे निमित्ते, रणे = युद्धे वर्तमाने = प्रवर्तमाने, जयाकांक्षी = विजयाभिलाषी, मालवदेशरक्षी = मालवदेशरक्षकः । (मानसारः) विविधायुधस्थैर्यचर्याञ्चितसमरतुलितामरेश्वरस्य = विविधानि विभिन्नानि आयुधानि प्रहरणानि तेषां स्थैर्येण स्थिरतया याचर्या चालनं प्रयोगोवा तया अञ्चितं युक्तं यत्समरं युद्धं तस्मिन् तुलितः उपमितः अमरेश्वरः देवेन्द्रः येन तस्य, मगधेश्वरस्य = राजहंसस्य, उपरि = उपरिष्टात्, पुरा = प्राक्, पुरारातिदत्ताम् = शंकर प्रदत्ताम्, गदाम् = आयुधविशेषम्, प्राहिणोत् = अक्षिपत् । निशितशरनिकरशकलीकृतापि = निशताः तीक्ष्णाश्च ते शराः वाणाः तेषां निकरेण समूहेन शकलीकृतापि खण्डशः कृतापि, सा = गदा, पशुपतिशासनस्य = पशुपतेः भगवतः शंकरस्य शासनस्य वचनस्य, अवन्ध्यतया = अव्यर्थतया, सूतम् = सारथिम् , निहत्य = हत्वा, रथस्थम् = स्यन्दनस्थम् । राजानम् = नृपम्, = मूर्च्छितम् = चैतन्यरहितं, मूर्च्छा

युक्तं, वा अकार्षीत्=अकरोत्। ततः=तदनन्तरंवीतप्रग्रहाः = वीताः मुक्ताः प्रग्रहा रश्मयः येषां ते, अक्षतविग्रहाः=अक्षतः क्षतिरहितः विग्रहः शरीरं येषां ते, वाहाः=अश्वाः, रथम्=स्यन्दनम्, आदाय=आकृष्य, दैवगत्या=दैवेन यदृच्छया वा, अन्तःपुरशरण्यम्=अन्तःपुरस्य राजस्त्रीणां शरणे साधुः इति शरण्यम् राजदारारक्षकमित्यर्थः। महारण्यम्=महावनम्, प्राविशन=प्रवेशं अकुर्वन्।

टिप्पणी :—'मूलबलम्' कामन्दक नीति के अनुसार सेना का ६ प्रकार का विभाग किया गया है उनमें मूल बल सबसे अच्छा माना गया है।

षड् विधं तु बलं व्यूह्य द्विषतोऽभिमुखं व्रजेत्।
मौलं भृतं श्रेणि सुहृद् द्विषद् आटविकं बलम्॥

पूर्वं पूर्वं गरीयस्तु—१३।२-३।

शकलीकृता=अशकलं शकलं सम्पद्यमानं कृतं इस अर्थ में='अभूत तद्भावे च्विः, इस सूत्र से च्वि आदि प्रत्यय होकर सिद्ध होता है। पशुपति शब्द शैव दर्शन से भी सम्बन्धित है। तदनुसार पदार्थ के पशु, पाश और पति तीन भेद है। अविद्या से बद्ध जीवपशु है, अविद्या को पाश तथा अविद्यापाश से मुक्त शिव को पति कहते हैं। प्राहिणोत् 'प्र+हि गतौ' धातु से लुङ् लकार का रूप है।

मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यं प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत्। तत्र हेतितततिहति श्रान्ताअमात्या दैवगत्याऽनुत्क्रान्तजीविता निशान्तवातलब्धसंज्ञाः कथंचिदाश्वस्य राजानं समन्तादन्वीक्ष्यानवलोकितवन्तो दैन्यवन्तो देवीमवापुः। वसुमती तु तेभ्यो निखिलसैन्यक्षतिं राज्ञोऽदृश्यत्वं चाकर्ण्योद्विग्ना शोकसागरमग्ना रमणानुगमने मतिं व्यधत्त।

हिन्दी अर्थ—विजय को प्राप्त करके मालवराज मानसार ने विशाल मगधराज्य को आक्रान्त करके पुष्पपुर में अधिकार कर लिया। युद्ध में अस्त्र समुदाय के द्वारा प्रपीडित मन्त्रिगण, भाग्यवशात् जीवित होकर प्रातःकालीन वायु के द्वारा चेतना प्राप्त करके, धैर्य के साथ चारों को राजा को देखकर न प्राप्त करके दीनभाव युक्त होकर महारानी वसुमती

के पास पहुंचे। रानी वसुमती भी उनसे सम्पूर्ण सेना का विनाश श्रवणकर और राजा की अदृश्यता को सुनकर खिन्न होती हुई शोकसागर में डूबी हुई पति का अनुगमन करने की इच्छा की।

संस्कृतव्याख्या :—मालवनाथः = मालवेश्वर मानसारः, जयलक्ष्मीसनाथः = जयलक्ष्म्या विजयश्रिया सनाथः समेत इति, मगधराज्यम् = मगधदेशं, प्राज्यम् = प्रवृद्धम्, समाक्रम्य, अधिकृत्येतिभावः, पुष्पपुरम् = कुसुमनगरम्, पाटलिपुत्रमिति, अध्यतिष्ठत् = अधिकारमकरोत्। तत्र = युद्धे, हेतिततिहतिश्रान्ता = हेतीनां आयुधानां ततिभिः पंक्तिभिः हतिः ताडनं प्रहारो वा तया श्रान्ताः क्लान्ताः, अमात्याः = मन्त्रिणः, दैवगत्या = दैवयोगेन, अनुत्क्रान्तजीविता = न उत्क्रान्तं निर्गतं जीवतं प्राणाः येषां ते (मन्त्रिविशेषणम्) निशान्तवात लब्धसंज्ञाः-निशायाः रजन्याः अन्तः अवसानं तत्सम्बन्धि वातः पवनः तेन लब्धा प्राप्ता संज्ञा चैतन्यं यैस्ते, कथंचिद् = कथमपि, आश्वस्य = धैर्यं अवलम्ब्य, राजानं = नृपं राजहंसम्, समन्तात् = सर्वत', अन्वीक्ष्य = अवलोक्य, अन्विष्येतिभावः अनवलोकितवन्तः = न दृष्टवन्तः, दैन्यवन्तः = खेदयुक्ताः, देवी = महाराज्ञीम्, अवापुः = आगतवन्तः। वसुमती = राजहंसस्य तन्नामिकापत्नी, तेभ्यः = मन्त्रिभ्यः, निखिल सैन्यक्षतिम् = निखिलं सम्पूर्णञ्चयत् सैन्यं बलं तस्य क्षतिं विनाशम्, राज्ञः = स्वस्वामिनोमानसारस्य, अदृश्यत्वम् = चक्षुर्भ्यामप्राप्यत्वम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, उद्विग्ना = खिन्ना, शोकसागरमग्ना = शोकः दुःखमेव सागरः समुद्रः तत्र मग्ना निमग्ना (सती) रमणानुगमने = रमणस्य पत्युः अनुगमने अनुमरणे, मतिं = बुद्धि, व्यधत्त = अकरोत्।

टिप्पणी—रमण शब्द पति के अर्थ में करण में ल्युट् प्रत्यय हुआ है। रम्यते अनेन इति—"रवेर्चिश्च शस्त्रं च वह्नि ज्वाला च हेतयः' इत्यमरः। 'आप्तृ व्याप्तौ' धातु से लिट् लकार का 'अवापुः' रूप है।

"कल्याणि, भूरमणमरणमनिश्चितम्। किञ्च दैवज्ञकथितो मथितोद्धताराति: सार्वभौमोऽभिरामो भविता सुकुमारः कुमारस्त्वदुदरे वसति। तस्मादद्य तव मरणमनुचितम्' इति भूषित भाषितैरमात्यपुरोहितैरनुनीयमानया तया क्षणं क्षणहीनया तूष्णीमस्थायि।

हिन्दी अर्थ—मन्त्रियों ने उनके अनुमरण निश्चय को सुनकर कहा—हे कल्याणि ! पहले तो महाराज का मरना अनिश्चित है पुनश्च ज्योतिषियों के द्वारा बताया गया है कि आपके उदर में शत्रुओं को नाश करने वाला तथा चक्रवर्ती सुकुमार पुत्र है। इसलिए आपका मरणनिश्चय भी उचित नहीं है। इस प्रकार मनोहारी वचन सुनकर मन्त्रियों और पुरोहितों के द्वारा समझायी जाती हुई रानी क्षण भर के लिए उत्सवहीन होती हुई चुप रही।

संस्कृतव्याख्या :—कल्याणि = कल्याणशीले, भूरमणमरणम् = भुवः पृथिव्याः रमणस्य पत्युः मरणं मृत्युः, अनिश्चितम् = अनिर्णीतम्, दैवज्ञकथितः = दैवज्ञेन मौहूर्तिकेन दैवज्ञैः वा कथितः उक्तः, मथितोद्धरातिः = मथिताः मानविमर्दिताः उद्धताः धृष्टाः अरातयः शत्रवः येन सः, सार्वभौमः = चक्रवर्ती, अभिरामः = मनोज्ञः, सुकुमारः = कोमलः, कुमारः = राजकुमारः पुत्रो वा उदरे = कुक्षौ, भविता = भविष्यतीत्यर्थः, तस्मात् = तस्मात् कारणात्, अद्य = इदानीम् तव = भवतः, मरणम् = अनुमरणम्, अनुचितम् = अयुक्तं अश्रेयस्करमित्यर्थः। भूषितभाषितैः = भूषितं सुष्ठु शोभनं वा भाषितं येषां तैः, अमात्यपुरोहितैः अमात्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताश्च पुरोधसश्चतैः, अनुनीयमानया = प्रणीयमानया, तया = वसुमत्या, क्षणम् = मुहूर्तम्, क्षणहीनया = उत्सवरहितया, तूष्णीम् = जोषम्। अस्थायि = स्थितम्।

टिप्पणी :—'क्षणम्' 'कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे' इस कारक सूत्र से द्वितीया हो जाती है 'अस्थायि' स्था धातु से भाव में लुङ् लकार का रूप है। 'क्षणः उद्धर्षो मह उद्धवः उत्सवः' इति कोशः। अस्थायिः ष्ठा गतिनिवृत्तौ' धातु से कर्म में लुङ् लकार का रूप है।

अथार्धरात्रेनिद्रानिलीननेत्रे परिजने विजने शोकपारावारमपारमुत्तर्तुमशक्नुवती सेनानिवेशदेशं निःशब्दलेशं शनैरतिक्रम्य यस्मिन् रथस्य संसक्ततया तदानयनपलायनश्रान्ता गन्तुमक्षमाः क्षमापतिरथ्याः पथ्याकुलाः पूर्वमतिष्ठंस्तस्य निकटवटतरोः शाखायां मृतिरेखायामिव क्वचिदुत्तरीयार्धेन बन्धनं मृतिसाधनं विरच्य मर्तुकामाभिरामा वाङ्माधुरीविरसीकृतकलकण्ठकण्ठा साश्रुकण्ठा

व्यलपत् 'लावण्योपमित पुष्पसायक, भूनायक, भवानेव भाविन्यपि जन्मनि वल्लभो भवतु' इति ।

हिन्दी अर्थ—इसके पश्चात् आधी रात में सभी नौकरों के सो जाने पर एकान्त में चुपके से धीरे-धीरे शोक सागर को पार करने में असमर्थ होती हुई रानी वसुमती वहाँ पर गयी जहाँ पर राजा के रथ को लाने में थके हुए घोड़े स्थित थे। वहाँ पर समीपस्थ बरगद वृक्षकी शाखा में मृत्यु रेखा के समान दुपट्टे से मृत्युदायक बन्धन बनाकर (फांसी लगाने की रस्सी बनाकर) मरने की इच्छा से, कोयल की ध्वनि को भी तिरस्कृत करने वाली मधुरध्वनि से गद्गद् कण्ठ से विलाप करने लगी। 'हे सौन्दर्य में काम के तुल्य ! हे राजन् ! आप मेरे भावी जीवन में भी प्रिय बनें'।

संस्कृतव्याख्या :—अथ = तदनन्तरम्, अर्धरात्रे = निशीथकाले, निद्रानिलीननेत्रे = निद्रया प्रमीलया निलीने मीलिते नेत्रे नयने यस्य तस्मिन्,परिजने = भृत्यवर्गे,विजने = विविक्ते, निर्जने वा, शोकपारावारम् = दुखसागरम्, अपारम् = पारयितुमशक्यम्, उत्तर्तुम् = पारयितुम्, अशक्नुवती = असमर्था सती, सेनानिवेशदेशम् = सेनायाः सैन्यस्य निवेशः शिविरं तस्य देशः प्रदेशः तम्, निःशब्दलेशम् = निर्गतः शब्दस्यलेश यस्मात्तम्, शब्दरहितमिति भावः, शनैः = मन्दम् अतिक्रम्य = उल्लङ्घ्य, रथस्य = स्यन्दनस्य, संसक्ततया = संलग्नतया, तत्परतया वा, तदानयनपलायन श्रान्ताः = तस्य राज्ञः राजहंसस्य आनयनं समानयनं तस्मिन् पलायनं धावनं तेन श्रान्ताः क्लान्ताः, गन्तुम् = यातुम्, अक्षमाः = असमर्थाः क्षमापतिरथ्याः = क्षमापतेः भूपतेः रथ्याः अश्वाः इति, पथ्याकुलाः = पथि मार्गे आकुला व्याकुलाः इति, पूर्वन् = प्रथमम्, अतिष्ठन् = स्थिताः आसन्, निकटवटतरोः = निकटे समीपे यो वटतरुः वृट वृक्षः तस्य, शाखायाम् = प्रशाखायाम्, मृतिरेखायामिव = मृत्युलेखायामिव, उत्तरीयार्धेन = उत्तरीय-वस्त्रेण, बन्धनम् = पाशम्, मृतिसाधनम्, = मृत्युसाधकम्, विरच्य = कृत्वा, मर्तुकामा = मर्तुं कामः इच्छा यस्यास्य, अभिरामा = ललाम भूता, वाङ्माधुरीविरसीकृतकलकण्ठकण्ठा = वाचः वाण्याः माधुरी माधुर्यं तया विरसीकृतः नीरसीकृतः कलकण्ठस्य परभृतः कण्ठः ययासा, साश्रुकण्ठा = अश्रुपूर्णकण्ठा, गद्गदस्वरेतिभावः, व्यलपत् = विलापं अकरोत्, रुरोदेति भावः,लावण्योपमित पुष्पसायक = लावण्येन सौन्दर्येण उपमितः तुलितः

पुष्पसायकः कामः येन तत्सम्बुद्धौ, भूनायक = भुवः पृथिव्याः नायकः अधिपतिः तत्सम्बुद्धौ, भवानेव = त्वमेव, भाविनि = आगामिनि, जन्मनि जन्मकाले, वल्लभः = प्रियः, भवतु = अस्तु ।

टिप्पणी— मृतिरेखायामिव = उपमा अलंकार है जो लेखक के हस्तरेखा ज्ञान की ओर संकेत करता है। 'निःशब्दलेशम्' को क्रियाविशेषण भी माना जा सकता है निर्गतः शब्दलेशः यस्मिन् तत् यथा स्यात्तथा इस प्रकार होगा 'उत्तर्तुम्' उत् + तृ प्लवनतरणयोः धातु से ऋत इच्छातोः 'सूत्र से इत्व एवं 'वृत्तोवा' सूत्र से विकल्प से दीर्घ होने से उत्तरितुम् या उत्तरीतुम्, प्रयोग शुद्ध। लेखक द्वारा प्रयुक्त 'उत्तर्तुम्' अशुद्ध है। 'अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ' इतिकोशः, "समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः" इत्यमरः "संव्यानमुत्तरीयञ्च। इतिकोशः। 'रथ्यः' 'तद् वहति रथयुगप्रासंगम्' इस सूत्र से यत् प्रत्यय होगा। मतुंकामा- "तुं काम मनसोरपि" इससे अनुस्वार लोप हो जाता है।

तदाकर्ण्य नीहारकरकिरणनिकरसंपर्कलब्धावबोधो मागधोऽगाधरुधिरविक्षरणनष्टचेष्टो देवीवाक्यमेव निश्चिन्वानस्तन्वानः प्रियवचनानि शनैस्तामाह्वयत्। सा ससंभ्रममागत्यामन्दहृदयानन्दसंफुल्लवदनारविन्दा तमुपोषिताभ्यामिवानिमिषताभ्यां लोचनाभ्यां पिबन्ती विकस्वरेण स्वरेण पुरोहितामात्यजनमुच्चैराहूय तेभ्यस्तं अदर्शयत्। राजानिटिलतटचुम्बितनिजचरणाम्बुजैः प्रशंसितदैवमाहात्म्यैरमात्यैरभाणि-'देव, रथ्यचयः सारथ्यपगमे रथं रभसादरण्यमनयत्' इति।

हिन्दी अर्थ— रानी के विलाप को सुनकर चन्द्रमा के किरण समुदाय के सम्पर्क से चेतना प्राप्त करके, जो मगधनरेश अत्यन्त खून के बहने के कारण चेतनाशून्य थे, इस प्रकार के राजाने रानी के ही वाक्यों को समझकर अर्थात् रानी को पहचान करके धीरे से उसको बुलाया। वह रानी वसुमती शीघ्र ही आकर के अत्यन्त हर्ष के कारण जिनका मुखकमल खिल गया था उनको निर्निमेष नेत्रों से देखती हुई उच्च स्वर से पुरोहित और मन्त्रियों को बुलाकर उन्हें दिखाया। मस्तक से अपने चरण कमलों का चुम्बन करते हुए तथा भाग्य की सराहना करके मन्त्रियों ने कहा—देव ! सारथी के निधन हो जाने पर भी घोड़ों ने जल्दी से रथ को इस जंगल में पहुंचा दिया।

संस्कृतव्याख्या :—तत् = विलापम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, नीहारकर किरण निकर संपर्क लब्धावबोधः = नीहाराः शैत्यप्रधाना (लक्षणया) कराः मयूखाः यस्य सः, चन्द्रमित्यर्थः तस्य किरणाः अंशवः तेषां निकरस्य समुदायस्य सम्पर्केण लब्धः प्राप्तः अवबोधः संज्ञा येन सः, मागध = मगधनरेशः, अगाधरुधिर विक्षरण नष्ट चेष्टः = अगाधं अत्यधिकं यत् रुधिरं शोणितं तस्य विक्षरणेन प्रवाहेन नष्टा विनष्टा चेष्टा प्रयासः यस्य सः, देवीवाक्यमेव = राज्ञावचनान्येव, निश्चिन्वानः = निश्चयं कुर्वन्, तन्वानः = विस्तारयन्, प्रथयन् वा, प्रियवचनानि = मधुरवाक्यानि, शनैः = मन्दं मन्दम्, ताम् = राज्ञीम्, आह्वयत = आह्वानं अकरोत्। सा = महिषी वसुमती, ससंभ्रमम् = शीघ्रम्, आगत्य = समागत्य, अमन्द हृदयानन्द संफुल्लवदनारविन्दा = न मन्द इति अमन्दः, अमन्दश्चासौ अधिकश्चासौ आनन्दः हर्षः प्रमोदो वा तेन संफुल्लं विकसितं वदनारविन्दं मुखपद्मम् यस्याः सा, तम् = राजानं राजहंसं, उपोषिताभ्याम् = जातोत्कण्ठाभ्यां, अनिमिषताभ्याम् = निर्निमेषाभ्याम्, लोचनाभ्यां = नेत्राभ्याम्, पिबन्ती = सस्पृहं पश्यन्तीत्यर्थः, विकस्वरेण = सुस्पष्टेन, स्वरेण = ध्वनिना, पुरोहितामात्य जनम् = पुरोहितमन्त्रिगणं, उच्चैः = उच्चस्वरेण (क्रियाविशेषणम्), आहूय = आह्वानं कृत्वा, तम् = राजानं, अदर्शयत् = दर्शनं अकारयत्, राजा = नृपः, निटिलतटचुम्बित निजचरणाम्बुजैः = निटिलतटेन ललाटस्थलेन चुम्बितं स्पृष्टं निजचरणाम्बुजं स्वपादकमलं यैस्तैः, प्रशंसितदैवमाहात्म्यैः = प्रशंसितं संस्तुतं दैवस्य भाग्यस्य अदृष्टस्य वा माहात्म्यं महिमा यैस्तैः, अमात्यैः = मन्त्रिभिः, अभाणि = कथितम्, देव = हे राजन्, रथ्यचयः = रथ्यानां अश्वानां चयः समुदायः इति, सारथ्यपगमे = सारथेः सूतस्य अपगमे नाशे सतीति शेषः, रभसात् = वेगेन, रथम् = स्यन्दनम्, अरण्यम् = काननम्, अनयत् = आनीत इत्यर्थः।

टिप्पणी—'वदनारविन्दा' रूपक अलंकार है। 'उपोषिताभ्यामिव' क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। 'विकस्वरेण' यहाँ पर स्थेशभासपिसकसो वरच्' इस सूत्र से वरच् प्रत्यय हो जाता है।

द्रष्टव्य पद्य = निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिवलोचनाभ्याम्" रघुवंश ११.१९- उपोषिताभ्यां से मिलाइये। अभाणि = भण धातु से कर्म में लुङ् लकार हुआ है।

तत्र निहत सैनिकग्रामे संग्रामे मालवपतिनाऽऽराधितपुरारातिना प्रहितया गदया दयाहीनेन ताडितो मूर्च्छामागत्य वने निशान्तपवनेन बोधितोऽभवम्' इति महीपतिरकथयत्। ततो विरचितमहेन मन्त्रिनिवहेन विरचितदैवानुकूल्येन कालेन शिविरमानीयापनीताशेषशल्यः विकसितनिजाननारविन्दो राजा सहसा विरोपितव्रणोऽकारि। विरोधि दैवधिक्कृतपुरुषकारो दैन्यव्याप्ताकारो मगधाधिपतिरधिकाधिरमात्यसम्मत्या मृदुभाषितया तया वसुमत्या मत्या कलितया च समबोधि। 'देव, सकलस्य भूपालकुलस्य मध्ये तेजोवरिष्ठो गरिष्ठो भवानद्य विन्ध्यवनमध्यं निवसतीति जलबुद्बुद् समाना विराजमाना सम्पत्ताडिल्लतेव सहसैवोदेति नश्यति च। तन्निखिलं दैवायत्तमेवावधार्य कार्यम्।

हिन्दी अर्थ—राजा ने कहा-"सैनिक समुदाय के युद्ध में समाप्त हो जाने पर मालव-नरेश ने शंकर द्वारा प्रदत्त गदा का निर्ममप्रहार किया जिससे मैं मूर्च्छित हो गया और इस वनप्रदेश में प्रातःकालिक वायु के द्वारा चेतना प्राप्त हुई।" इसके पश्चात् मन्त्रियों ने उत्सव मनाकर तथा भाग्य की आराधना करके राजा को शिविर में लाकर उसके सम्पूर्ण घाव दूर किये। प्रसन्नमुखवाला राजा शीघ्र ही घावों से रहित हो गया (उपचार के कारण) प्रतिकूल भाग्य से अपमानित पौरुष वाला दीनता से व्यस्त तथा मानसिक रूप से पीडित राजा की सेवा आदि मन्त्रियों की सम्मति से मृदुभाषिणी वसुमती अपनी बुद्धि से करने लगी तथा सान्त्वनापूर्ण वचन कहे।

हे राजन्! आप सम्पूर्ण राजाओं के मध्य में श्रेष्ठ हैं किन्तु आज विन्ध्य जंगल में रहते हैं। अतः यह राजलक्ष्मी जल के बुद्बुदों के समान बिजली की तरह सहसा आती और नष्ट होती है। अतः सब कुछ भाग्य के ही आधीन है यह विचार करके कार्य करना चाहिए।

संस्कृतव्याख्या :—तत्र = युद्धे, निहतसैनिकग्रामे = निहतः विनष्टः सैनिकानां ग्रामः समूहः यस्मिन्, संग्रामे = युद्धे, मालवपतिना = मालवराजेन, आराधितपुरारातिना = आराधितः पूजितः पुरारातिः शंकरः येन तेन, प्रहितया = प्रेरितया, गदया = तन्नामक प्रहरणेन, दयाहीनेन = निष्कृपेण, ताडितः = आहतः, मूर्छामागत्य = मूर्च्छां प्राप्य, अत्र = अस्मिन्

स्थाने, वने=कानने, निशान्तपवनेन=प्रातःकालिकवायुना, बोधितः= लब्धचेतनः, अभवम्=जातः, इति=इत्थं, महीपतिः=भूपतिः, अकथयन्=अवदत्। ततः=तदनन्तरम्, विरचितमहेन=विरचितः विहितः महः उत्सवः सत्कारो वा येन तेन,मन्त्रिनिवहेन अमात्यगणेन, विरचितदैवानुकूल्येनकालेन=विरचितं कृतं दैवस्य अदृष्टस्य आनुकूल्यं अनुकूलता येनतेन, कालेन=समयेन, शिविरम्=स्कन्धावारम्, अनीय=आयनं कृत्वा, अपनीताशेषशल्यः=अपनीतानि उद्धृतानि अशेषाणि सर्वाणि शल्यानि वाणाग्राणि शंकवो वा यस्य सः, विकसितनिजाननारविन्दः=विकसितं विकचं निजाननारविन्दं स्वमुखकमलं यस्य सः, राजा=नृपः, सहसा=अकस्मात् विरोपितव्रणः=विरोपिताः पूरिताः व्रणाः क्षतयः यस्य सः, अकारि= कृतम्, विरोधिदैवधिक्कृतपुरुषाकारः=विरोधिना अननुकूलेन दैवेन अदृष्टेन धिक्कृतः न्यक्कृतः पुरुषाकारः पराक्रमः यस्य सः, दैन्यव्याप्ताकारः =दैन्येन दीनतया व्यस्तः परिव्याप्तः आकारः स्वरूपं यस्य सः, मगधाधिपतिः=मगधनरेशः, अधिकाधिः अतिशयेन अधिकाः आधिः मनोव्यथा यस्य सः, अमात्यसम्मत्या=मन्त्रिमन्त्रणया, मृदुभाषितया=मृदु मधुरं भाषितं भाषणं यस्याः तया, मञ्जुभाषिण्येत्यर्थः, मत्या=बुद्धया, कलितया=युक्तया, समबोधि=विज्ञापितः। देव=भो राजन्! सकलस्य= सम्पूर्णस्य, भूपाल कुलस्य=भूपतिसमुदायस्य, मध्ये=अन्तः, तेजोवरिष्ठः =तेजसा प्रतापेन वरिष्ठः महत्तमः, गरिष्ठः=गुरुः. भवानद्य=त्वमद्य, विन्ध्यवनमध्यम् = विन्ध्यारण्यम्, निवसति = प्रतिवसति, जलबुद्बुदसमाना=जलस्य सलिलस्य बुद् बुदः विकारः तत्समाना तत्सदृशी, विराजमाना=शोभमाना, सम्पत=राज्यलक्ष्मीः, तडिल्लतेव=विद्युल्लतेव, सहसा=अकस्मात, उदेति=उद्गच्छति, आविर्भवति वा दृष्टिपथमायातीतिभावः,नश्यति= तिरोभवति। तन्निखिलम्=दैवायत्तम् तदाखिलम्, =दैवाधनिम्। अवधीर्य=विचार्य, कार्यम्=कर्तव्यम्।

टिप्पणी—समबोधि=सम पूर्वक बुध धातु से कर्म में लुङ् लकार हुआ है।' वरिष्ठः तथा गरिष्ठः यहाँ पर क्रमशः उसका वर् आदेश तथा गुरु का गर् आदेश होकर अतिशय अर्थ में 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इस सूत्र से इष्ठन् प्रत्यय हो जाता है। वर आदि आदेश करने वाला सूत्र है=

प्रिथस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणांप्रस्थस्फववंहिगर्वषित्रब्द्राघिवृन्दा." 'विन्ध्यवनं निवसति' यहाँ पर 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से उप, अनु, अधि और आङ् उपसर्ग पूर्व में होने पर ही वस् धातु से आधार की कर्म संज्ञा होकर द्वितीया होती है। किन्तु यहाँ पर उपर्युक्त उपसर्ग न होने के कारण सप्तमी होगी = विन्ध्यवने निवसति' ही व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है। 'अकारि' डुकृञ् करणे धातु से कर्म में लुङ् लकार हुआ है। "वापुंसि शल्यं शङ्कुर्ना" इत्यमरः।

'किञ्च पुरा हरिश्चन्द्ररामचन्द्रमुख्या असंख्या महीन्द्राः ऐश्वर्येणोपमितमहेन्द्रा दैवतन्त्रं दुःखयन्त्रं सम्यगनभूयः पश्चादनेककालं निजराज्यमकुर्वन्। तद्वदेव भवान् भविष्यति। कंचन कालं विरचितदैवसमाधिर्गलिताधिस्तिष्ठतु तावत्" इति।

वामदेवस्यसाक्षात्कारः—

ततः सकलसैन्यसमन्वितो राहंसस्तपो विभ्राजमानं वामदेवनामानं तपोधनं निजाभिलाषावाप्तिसाधनं जगाम।

हिन्दी अर्थ–(रानी ने कहा) हे राजन् ! पहले हरिश्चन्द्र और रामचन्द्र इत्यादि असंख्य राजाओं ने जो इन्द्र के तुल्य थे, भाग्यवशात् पहले दुःख भोग करके बाद में बहुत समय तक राज्योपभोग किया। इसी प्रकार आप भी अर्थात् दुःख भोग करके सुख प्राप्त करेंगे। इसलिए भाग्य की आराधना करते हुए आप निश्चिन्त रहें। इसके पश्चात् अपनी सम्पूर्ण सेना के सहित राजहंस तपश्चरण से शोभित, अपनी अभिलाषा प्राप्ति के एकमात्र साधन तपस्वी वामदेव के पास गया।

संस्कृतव्याख्या :–किञ्च = अन्यच्च, पुरा = प्राचीनकाले, हरिश्चन्द्ररामचन्द्रमुख्याः = हरिश्चन्द्रश्च रामचन्द्रश्च तन्नामकौ मुख्यौ प्रमुखौ येषां ते, असंख्या = संख्यातीताः महीन्द्राः भूपतयः, ऐश्वर्येणोपमितमहेन्द्राः = ऐश्वर्येण समृद्ध्या उपमितः तुलितः महेन्द्रः सुरेन्द्रः यैस्ते, दैवतन्त्रम् = दैवाधीनम्, दुःखयन्त्रम् = दुःखमेवतन्त्रम् कष्टवृन्दमिति भावः, सम्यक् = निपुणम्, अनुभूय = अनुभवं कृत्वा, पश्चात् = तदनन्तरम्, अनेककालम् = बहुसमयम्, निजराज्यम् = स्वराज्यम्, अकुर्वन् = शासनं कृतवन्त इत्यर्थः। भवान् = त्वम्, भविष्यति = सुखं प्राप्स्यति इति भावः, कंचन

कालम्=किञ्चित् समयम्, विरचितदैवसमाधिः=विरचितः विहितः दैव समाधि दैवाराधनं येन सः, गलिताधिः=गलितः दूरीभूतः आधि मनोव्यथा यस्य सः, तिष्ठतु तावत्=प्रतीक्षतामिति भावः। ततः=तदनन्तरम् सकल सैन्य समेतः=सकलेन समग्रेण सैन्येन बलेन समेतः सहितः, राजहंसः= मगधनरेशः, तपो विभ्राजमानम्=तपसा तपश्चरणेन विशेषेणः भ्राजमानं दीप्यमानं, वामदेव नामानम्=तन्नामकं ऋषिम्, तपोधनम्=तापसम्, निजाभिलापावाप्ति साधनम्=निजः स्वकीयः अभिलाषः इच्छः कामो वा तस्य अवाप्तिः प्राप्तिः तस्य साधनं साधनभूतं, जगाम=ययौ।

तं प्रणम्य तेन कृतातिथ्यस्तस्मै कथित कथ्यस्तदाश्रमे दूरीकृतः श्रमे कंचन कालमुषित्वा निजराज्याभिलाषी मितभाषी सोमकुलावतंसो राजहंसो मुनिमभाषत्='भगवन्, मानसारः प्रबलेन दैवबलेन मां निर्जित्य मद्भोग्यं राज्यमनु=भवति। तद्=वदहमप्युग्रं तपो विरच्य तमरातिमुन्मूलयिष्यामि लोकशरण्येन भवत्कारुण्येनेति नियमवन्तं भवन्तं प्राप्नवम्' इति।

ततस्त्रिकालज्ञस्तपोधनो राजानमवोचत्-'सखे! शरीरकार्श्यकारिणातपसालम्। वसुमतोगर्भस्थः सकलरिपुकुलमर्दनो राजनन्दनो नूनं भविष्यति, कंचनकालं तूष्णीमास्व इति'।

हिन्दी अर्थ—उस मुनि को प्रणाम करके, उसके द्वारा आतिथ्य को स्वीकार करके तथा उसे आत्मकथ्य बताकर परिश्रम को दूर करने वाले उसके आश्रम में कुछ समय तक रहकर अपने राज्य की अभिलाषा करने वाले, स्वल्पभाषी, चन्द्रकुल के भूषण स्वरूप राजहंस ने मुनि से कहा 'हे भगवन्! मानसार प्रबल दैवबल से मुझे जीत करके मेरे भोग्य राज्य का उपभोग कर रहा है। उसके समान मैं भी उग्र तपस्या करके उस शत्रु का नाश करूँगा। अतः लोगों को शरण देने वाले आपकी कृपा से ही आपके पास आया हूँ।

इसके पश्चात् भूत, वर्तमान एवं भविष्य ज्ञाता वह तपस्वी राजा से बोला—'सखे! शरीर को दुर्बल बनाने वाली तपस्या मत करो। निश्चिन्त रूप से रानी वसुमती के गर्भ से सम्पूर्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाला राज पुत्र पैदा होगा। अतः आप कुछ समय तक शान्त रहें।

संस्कृतव्याख्या :—तम् = महामुनिम्, प्रणम्य = नमस्कृत्य, तेन = मुनिना, कृतातिथ्यः = कृतं विहितं आतिथ्यं अतिथिसत्कारः यस्य सः, तस्यै = वामदेवायकथित कथ्यः कथितं उक्तं कथ्यंकथनीयं येन सः, तदाश्रमे = मुनिकुटीरे, दूरीकृतश्रमे = दूरीकृतः अपा कृतः श्रमः परिश्रमः यत्रतस्मिन्, कञ्चनकालम् = किञ्चित् समयम्, उषित्वा = निवासं कृत्वा, निजराज्याभिलाषी = स्व राज्याकांक्षी, मितभाषी = स्वल्पभाषी, सोकुमलावतंसः = चन्द्रकुलालंकार:, राजहंसः = मगधनरेशः, मुनिम् + ऋषिम्, अभाषत = अवदत्, भगवन् = भो मुने !, मानसार = मालवाधिपतिः, प्रबलेन = प्रकृष्टेन, दैवबलेन = दैव सामर्थ्येन, माम् = राजहंसम्, निर्जित्य = विजित्य, मद्भोग्यम् = मया भोग्यं सेव्यम्, राज्यम् = राजलक्ष्मीमितिभाव:, अनुभवति = सेवते, तद्वत् = तत्सदृशम्, अहमपि, उग्रम = उत्कटम्, तपः = तपश्चरणम्, विरच्य = कृत्वा, अरातिम् = शत्रुम्, उन्मूलयिष्यामि = उन्मूलनं करिष्यामि, लोक शरण्येन = लोकानां जनानां शरणे रक्षणे साधुः तेन, भवत्कारुण्येन = भवतः तव कारुण्येन करुणया, नियमवन्तम् = व्रतिनम्, भवन्तम् = त्वाम्, प्राप्नवम् = आगच्छम् । तत। = तदनन्तरम् त्रिकाल = भूत भविष्यत् वर्तमान काल ज्ञाता, तपोधनः = तापसः, राजानम् = नृपम्, अवोचत् = अवदत्, सखे = हे मित्र, शरीरकार्श्यकारिणा = शरीरस्य कायस्य कार्श्यं दौर्बल्यं तत् करोतीतितेन, तपसा = तपश्चरणेन, अलम् = माकुरु इति भावः । वसुमतीगर्भस्थः = राज्ञीगर्भस्थितः, सकल रिपुकुलमर्दनः = सकलानां समग्राणां रिपूणां शत्रूणां कुल समूहं मर्दयति विनाशयति यः सः, राजनन्दनः राजपुत्रः नूनम् = निश्चितम्, संभविष्यति = समुत्पन्नो भविष्यति । कञ्चनकालम् = किञ्चित् समयं, तूष्णीम् = जोषम मौनं वा, आस्स्व = तिष्ठ ।

टिप्पणी—'तपसालम्' यहाँ अलं शब्द का प्रयोग है यदि इस 'अलम्' शब्द का प्रयोग शक्त या समर्थं के अर्थ में होता है तो चतुर्थी विभक्ति प्रयोग "नमः स्वस्ति स्वस्ति स्वाहालं वषड्योगाच्च । इस सूत्र से चतुर्थी अन्यथा रोकने के अर्थ में तृतीया होती है । उषित्वा वसनिवासे धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है । तथा 'ग्रहीज्यावयिव्यधि - सूत्र से सम्प्रसारण होगा" वसतिक्षुधोरिट्' इस सूत्र से इड् का आगम तथा "शासिवसिघसीनां च" इससे षत्व हो जायेगा ।

गगनचारिण्यापि वाण्या 'सत्यमेतत्' इति तदेवा वाचि। राजापि मुनिवाक्यमङ्गीकृत्यातिष्ठत्।

राजवाहनस्य जन्म :—

ततः सम्पूर्णगर्भदिवसा वसुमती सुमुहूर्ते सकल लक्षणलक्षितं सुतमसूत। ब्रह्मवर्चसेन तुलितवेधसं पुरोवसं पुरस्कृत्य कृत्यविन्महीपतिः कुमारं सुकुमारं जात संस्कारेण बालालंकारेण च विराजमानं राजवाहन नामानं व्यधत्त।

मन्त्रिपुत्राणामुत्पत्ति :—

तस्मिन्नेव काले सुमतिसुमित्रसुमन्त्र सुश्रुतानां मन्त्रिणां प्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुताख्या महाभिख्याः सूनवो नवोद्यदिन्दुरुचश्चिरायुषः समजायन्त। राजवाहनो मन्त्रिपुत्रैरात्ममित्रैः सह बालकेलीरभवन्नवर्धत।

हिन्दी अर्थ—इसी बीच आकाशवाणी ने भी कहा कि यह बात सत्य है राजा भी मुनि-वचनों को स्वीकार कर वहीं रहने लगा। इसके पश्चात् गर्भकाल समय पूर्ण होने पर वसुमती ने शुभ मुहूर्त में सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया। अपने ब्रह्मतेज के द्वारा ब्रह्मोपम पुरोहित को आगे करके अर्थात् उनकी मन्त्रणा से ही कार्य को समझने वाले राजा राजहंस ने जातकर्म संस्कार के द्वारा तथा बालकोचित अलंकारों से शोभित सुकुमार राजकुमार का नाम राजवाहन रखा।

उसी समय सुमति, सुमित्र, सुमन्त्र और सुश्रुत नामक मन्त्रियों के प्रमति, मित्रगुप्तः, मन्त्रगुप्त और विश्रुत नामक क्रमशः चार पुत्र अत्यन्त शोभा वाले तथा नूतन चन्द्र के समान कान्ति वाले, दीर्घजीवी उत्पन्न हुए।

संस्कृतव्याख्या :—गगनचारिण्यापि = आकाशचारिण्यापि, वाण्या = वाचा, सत्यमेतत् = अवितथमेतत्, अवाचि = अभाषि, राजापि = नृपोऽपि, मुनिवाक्यम् = तापसवाक्यम्, अङ्गीकृत्य = स्वीकृत्य, अतिष्ठत् = निवासं अकरोत्। ततः = तदनन्तरम्, सम्पूर्ण गर्भदिवसा = सम्पूर्णाः परिपूर्णाः गर्भदिवसाः गर्भकालावधिः यस्या सा, वसुमती = तन्नामिका राज्ञी, सुमुहूर्ते = शुभलग्नवेलायां, सकल लक्षणलक्षितम् = सकलैः समग्रैः लक्षणैः राजचिह्नैः लक्षितः युक्तः तम्, सुतम् = पुत्रम्, असूत = सुषुवे। ब्रह्मवर्चसेन =

ब्रह्मणः विधातुः वर्चः तेजः तेन, तुलितवेधसम् = तुलितः उपमितः वेधा ब्रह्मा येन तं, पुरोधस = पुरोहितं, उपाध्यायं वा, पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्य, कृत्यवित् = कार्यज्ञः, महीपतिः = भूपतिः, कुमारम् = राजसूनुम्, सुकुमारम् = सुकोमलम्, जातसंस्कारेण = जातकर्म नाम्ना संस्कार विषेशेण, वालालंकारेण = वालको चिताभूषणेनविराजमानम् = विशेषेण शोभमानम्, राजवाहननामानम् = तन्नामकं पुत्रम्, व्यधत्त = अकरोत् ।

तस्मिन्नेवकाले = तत्समये, सुमति सुमित्र सुमन्त्रसुश्रुतानां तन्नामकानाम्, मन्त्रिणाम् = अमात्यानाम्, प्रमति मित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुताख्याः = तन्नामानः मन्त्रिपुत्राः, महाभिख्या = महती अभिख्या शोभा येषां ते, सूनवः = पुत्राः नवोद्यदिन्दुरुचः = नवः अभिनवः उद्यन् उद्गच्छन् आविर्भवनवा, इन्दुः विधुः तस्य रुक् इव रुक् कान्तिः येषां ते, चिरायुषः = चिर जीविनः, समजायन्त = उत्पन्नाः अभूवन् राजवाहनः = तन्नमामकः, मन्त्रिपुत्रैः = अमात्यात्मजैः आत्ममित्रैः = स्वसुहृद्भिः, सह = साकम् वालकेलीः = वाल क्रीडाः अनुभवन् = कुर्वन्, अवर्धत = वृद्धिमगात् ।

टिप्पणी—(अवाचि) वच् धातु से कर्म में लुङ् लकार हुआ है। 'आत्म मित्रैः सह' यहाँ पर 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। ब्रह्मवर्चसेन "ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः" इस सूत्र से अच् होगा। "स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा" इत्यमरः ।

उपहारवर्मोत्पत्ति कथा—

अथ कदाचिदेकेन तापसेन रसेन राजलक्षणविराजितं कञ्चिन्नयनानन्दकरं सुकुमारं कुमारं राज्ञे समर्प्यावाचि—'भूवल्लभ ! कुश समिदानयनाय वनं गतेन मया काचिदशरण्या व्यक्त कार्पण्याश्रु मुञ्चन्ती वनिता विलोकिता। "निर्जने वने किंनिमित्तं रुद्यते त्वया "इति पृष्टा सा कर सरोरुहैरश्रुप्रमृज्य सगद्गदं मामवोचत्—"मुने, लावण्यजितपुष्पसायके मिथिलानायके कीर्तिव्याप्त सुधर्मणि निजसुहृदो मगधराजस्य। सीमन्तिनीसीमन्तमहोत्सवाय पुत्रदारसमन्विते पुष्पपुरमुपेत्य कञ्चन कालमधिवसति समाराधित गिरीशो मालवाधीशो मगधराजं योद्धुमभ्यगात् ।

हिन्दी अर्थ—इसके पश्चात् एक वार किसी तपस्वी ने प्रेमपूर्वक राजा के चिन्हों से सुशोभित तथा नेत्रों को आनन्द देने वाले सुकुमार राजकुमार को राजा को देकर कहा हे राजन् ! कुश और समिधा लेने के लिए जंगल में गये हुए मैंने असहाय तथा दुःख के अश्रु प्रवाहित करती हुई एक औरत को देखा। निर्जन वन में तुम क्यों रोती हो' इस प्रकार पूंछी जाती हुई उसने अपने कर-कमलों से आंसुओं को पोंछकर गद् गद् स्वर में कहा हे मुने ! सौन्दर्य में काम को जीतने वाला मिथिलानायक प्रहारवर्मा, जिसकी कीर्ति देवसभा में भी व्याप्त थी, अपने मित्र मगधराज राजहंस की रानी के सीमन्तमहोत्सव के लिए, पुत्र और पत्नी सहित पुष्पपुर (राजहंस की राजधानी) आया और उसके कुछ समय वहाँ पर रहनेपर, भगवान् शंकर की आराधना करने मालवराज (मानसार) मगधराज से युद्ध करने के लिए आया।

संस्कृतव्याख्या :—अथ=तदनन्तरम्, कदाचित्=कस्मिन् समये एकेनः अज्ञातेन, तापसेन=ऋषिणा, रसेन=प्रेम्णा, राजलक्षणविराजितम्=राज्ञः भूपतेः लक्षणैः चिन्हैः विराजितं सुशोभितं, नयनानन्दकरम् =नयनयोः नेत्रयोः आनन्दकरं आनन्ददायिनं, सुकुमारम्=सुकोमलम्, कुमारम्=राजकुमारं पुत्रम् वा, राज्ञे=नृपाय, समर्प्य=दत्वा, अवाचि उक्तम्, भूवल्लभ=पृथिवीप्रिय ! कुशसमिदानयनाय=कुशाश्च दर्भाश्च समिधश्च याज्ञिकेन्धनानिच तेषां आनयनं समानयनं तस्मै, वनम्=काननम्, गतेन=यातेन, मया=तापसेन, अशरण्या=नास्ति शरण्यं रक्षकः यस्या सा, व्यक्तकार्पण्या=व्यक्तं प्रकटीकृतं कार्पण्यं दैन्य यया सा, अश्रु =नयनजलम्, वाष्पं वा, मुञ्चन्ती, त्यजन्ती, वनिता=स्त्री विलोकिता =अवलोकिता, निर्जन=विजने, वने=कानने, अरण्ये वा, किंनिमित्तम् किंकारणं, रुद्यते=रोदनं क्रियते, त्वया=भवता, इति=इत्थं, पृष्टा सा =वनिता, करसरोरुहैः=करकमलैः, अश्रु=वाष्पं, प्रमृज्य=अपाकृत्य, सगद्गदम्=गद् गद् स्वरेणेतिभावः, माम्=तापसम्, अवोचत=अवदत, मुने=ऋषे, लावण्यजितपुष्पसायके=लावण्येन सौन्दर्येण जितः विजितः पुष्पसायकः कामदेवः येन तस्मिन्, मिथिलानायके=मिथिलेश्वरे, कीर्तिव्याप्त सुधर्मणि=कीर्त्या=यशसा व्याप्ता व्यापृता सुधर्मा देवसभा येन

तस्मिन्, निजसुहृदः=स्वमित्रस्य, मगधराजस्य=राजहंसस्य, सीमन्तिनी सीमन्तमहोत्सवाय=सीमन्तिन्याः राज्ञयाः सीमन्तमहोत्सवः सीमन्तोन्नयनसंस्कारविशेषः, तस्मै, पुत्रदारसमन्विते=पुत्राश्च आत्मजाश्च दाराश्च नार्यश्च तैः समन्विते युक्ते, पुष्पपुरम्=कुसुमनगरम्, उपेत्य=आगत्य, कञ्चनकालम्=कञ्चनसमयम्, अधिवसति=प्रवसति सति, समाराधित गिरीशः=समाराधितः समर्चितः गिरीशः शंकरः येन सः, मालवाधीशः=मालवेश्वरः, मगधराजम=राजहंसम, योद्धुम्=युद्धं कर्तुम, अभ्यगात् आगच्छत् ।

टिप्पणी—करसरोरुहैः यहाँ पर वनिता एकवचन है अतः तदनुसार 'करसरोरुहाभ्याम्, पाठ ही समीचीन प्रतीत होता है। किन्तु सौन्दर्यातिशय के कारण वहुवचन भी क्षम्य माना जा सकता है। 'मुञ्चन्ती' यह मुच्लृ मोक्षणे तुदादि धातु का रूप है शतृ प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग का रूप है। यहाँ पर 'आच्छीनद्योर्नुम्' इस सूत्र से विकल्प से नुम् होने के कारण मुञ्चन्ती तथा 'मुञ्चती' दोनों रूप बनते हैं। 'सुधर्मणि यहाँ पर=धर्मादनिष्केवलात्' इस सूत्र से अनिच् होकर धर्मन् शब्द से सप्तमी एक वचन में धर्मणि बनेगा। 'कालमधिवसति' यहाँ पर 'कालम्' में द्वितीया 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से कर्म संज्ञा होने के पश्चात् होती है। 'अधिवसति' यह रूप अधि+वस निवासे धातु का शतृ प्रत्ययान्त सप्तमी एकवचन का रूप है। नकि लट् लकार 'रसो गन्धरसे जले। शृङ्गारादौ विषे वीर्ये तिक्तादौ द्रवरागयोः' इतिमेदिनी। शरणं गृह रक्षित्रोः' इत्यमरः।

तत्र प्रख्यातयोरेतयोरसंख्ये संख्ये वर्तमाने सुहृत्साहाय्यकं कुर्वाणो निजबले सति विदेहे विदेहेश्वरः प्रहारवर्मा जयवता रिपुणाभिगृह्य कारुण्येन पुण्येन विसृष्टो हतावशेषेण शून्येन सैन्येन सह स्वपुरगमनमकरोत्।

हिन्दी अर्थ—प्रसिद्ध उन दोनों (अर्थात् मालवराज मानसार तथा मिथिलानरेश प्रहारवर्मा) का युद्ध होने पर, मित्र की सहायता करते हुए अपनी सेना के नष्ट हो जाने पर प्रहारवर्मा को विजयशील शत्रु मानसार ने पकड़ लिया करुणावशात् या उसके पुण्यावशेष के कारण मुक्त प्रहारवर्मा अपनी बची हुई सेना के साथ अपने नगर को चला गया।

संस्कृतव्याख्या :—तत्र=तस्मिन् स्थाने, कुसुमपुर इत्यर्थः, प्रख्या-तयोः=विख्यातयोः, एतयोः=द्वयोः, असंख्ये=संख्यातीते, संख्ये=युद्धे, वर्तमाने = भवने सति, सुहृत्साहाय्यकम् = सुहृदः मित्रस्य साहाय्यकं साहाय्यमेव साहाय्यकं सहायतामित्यर्थः, कुर्वाणः=कुर्वन्, निजबले= स्वसैन्ये, विदेहे = विगतः नाष्टः देहः शरीरं यस्य तस्मिन् मृते इत्यर्थः, विदेहेश्वरः = मिथिलाधिपः प्रहारवर्मा=तन्नामकः, जयवता=विजय-शीलेन, रिपुणा=शत्रुणा, अभिगृह्य=आक्रम्य, कारुण्येन=दयया, पुण्येन =सुकृतेन, विसृष्टः = त्यक्तः, हतावशेषेण = निहतावशेषेण, शून्येन= =शस्त्रादिरिक्तेन, सैन्येन = दलेन, सह = सार्धम्, स्वपुरगमनम्= निजनगर प्रस्थानं, अकरोत्=अगच्छदित्यर्थः ।

टिप्पणी :—'साहाय्यकम्' यहाँ पर स्वार्थ में 'कप् होने से साहाय्य अर्थ ही बना रहता है। 'कारुण्येन' यहाँ पर गुणवचन ब्राह्मणादि—सूत्र से भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होकर बनता है। 'कुर्वाणः' कृ धातु से शानच् प्रत्यय का रूप है।

ततो वनमार्गेण दुर्गेण गच्छन्नधिकबलेन शवरबलेन रभसाद-भिहन्यमानोमूलबलाभिरक्षितावरोधः स महानिरोधः पलायिष्ट। तदीयार्भकयोर्यमयोर्धात्रीभावेन परिकल्पिताहं मद् दुहितापि तीव्रगतिं भूपतिमनुगन्तुमक्षमे अभूवः। तत्र विवृतवदनः कोऽपि रूपी कोप इव व्याघ्रः शीघ्रं मामाघ्रातुमागतवान्। भीताहमुदग्रग्राव्णि स्खलन्ती पर्यपतम्। मदीयपाणिभ्रष्टो बालकः कस्यापि कपिला-शवस्य क्रोडमभ्यलीयत।

हिन्दी अर्थ—इसके पश्चात् दुर्गम वनमार्ग से जाते हुए, अधिक बल वाली शबर सेना के द्वारा आक्रान्त होता हुआ, अपनी मूल सेना से रक्षित सपत्नीक वह प्रहारवर्मा (सेना से) रक्षित होकर भाग गया। उसके दोनों जुड़वाँ बच्चों का पालन करने वाला मैं तथा मेरी पुत्री तेजगति वाले राजा का पीछा करने में असमर्थ थी। उस जंगल में कोई साक्षात मूर्ति-मान क्रोध की तरह कोई व्याघ्र शीघ्र ही मुझे सूंघने (खाने) के लिए आया। डरी हुई मैं ऊंचे नीचे पत्थरों पर लड़खड़ाती हुई गिरपड़ी। मेरे हाथ से गिरा हुआ बालक किसी मृत कपिला गाय की गोद में छिप गया।

संस्कृतव्याख्या:—ततः = तदनन्तरम्, वनमार्गेण = काननपथा, दुर्गेण = दुःखेन गन्तुं शक्यः तेन दुर्गमेणेत्यर्थः, गच्छन् = व्रजन्, अधिकबलेन = अधिकं अत्यन्तं बलं पराक्रमः यस्य तेन, शबरबलेन = शबरसैन्येन, रभसात् = वेगात्, अभिहन्यमानः = आक्रम्यमाण इत्यर्थः, मूलबलाभिरक्षितावरोधः—मूलबलेन मूलसेनया अभिरक्षितः सुरक्षितः अवरोधः शुद्धान्तः यस्य सः, सः = प्रहारवर्मा, महानिरोधः = महान् अत्यधिकः निरोधः अवरोधः यस्य सः, पलायिष्ट = पलायितः, तदीयार्भकयोः = तस्य इमौ तदीयौ च तौ अर्भकौ तयोः तत्पुत्रयोरित्यर्थं, यमयोः = यमलयोः, धात्री भावेन = उपमातृभावेन, परिकल्पिता = निर्मापिता, मद् दुहिता = मत्पुत्री, तीव्रगतिम् = तीव्रा वेगवती गतिः गमनं यस्य तम्, भूपति = राजानं, अनुगन्तुम् = अनुयातुं, अक्षमे = असमर्थे, अभूव = अभवाव । तत्र = कानने, विवृतवदनः = विवृतं विस्तारितं वदनं आननं यस्य सः, रूपी = साक्षात् रूपधारी, शरीरीत्यर्थं, कोप इव = क्रोध इव, व्याघ्रः = शार्दूलः, मां, आघ्रातुम् = भक्षितुमित्यर्थः, आगतवान् = आगतः, भीता = भीत्युपेता, अहं, उदग्राग्णि = उद्गतानि अग्राणि पुरो भागाः यस्य एतादृशः ग्रावा प्रस्तरशकलं तस्मिन्, स्खलन्ती = स्खलनं कुर्वन्ती, पर्यपतम् = अपतम्, मदीयपाणिभ्रष्टः—मदीयहस्तच्युतः, बालकः = शिशुः, कपिलाशवस्य = कपिलाया धेन्वाः शवस्य मृतशरीरस्य, क्रोडम् = अङ्कम्, अभ्यलीयत = प्रच्छन्नोऽभूत ।

टिप्पणी—अभिहन्यमानः = अभि + हन् धातु से कर्म में शानच् प्रत्यय हुआ है । पलायिष्ट = अय गतौ धातु से परि + अय उपसर्ग के रकार का 'उपसर्गस्यायतौ' सूत्र से लादेश होता है यह लुङ् लकार एकवचन का रूप है । 'अक्षमे अभूव' यहाँ 'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्' से प्रगृह्य संज्ञा होने से प्रकृतिभाव हो जाने से अन्य कोई सन्धि नहीं हुई है । 'अभूव' भू धातु लङ् लकार उत्तम पुरुष द्विवचन का रूप है । क्योंकि इस वाक्य में कर्ता अहं तथा दुहिता दो हैं । अतः क्रिया में उत्तम पुरुष द्विवचन का रूप लगा है ।

तच्छवाकर्षिणोऽमर्षिणो व्याघ्रस्य प्राणान् बाणो बाणासन यन्त्र मुक्तोऽपाहरत् । लोलालको बालकोऽपि शबरैरादाय कुत्रचिदुपानीयत् । कुमारमपरमुद्वहन्ती मद्दुहिता कुत्र गता न जाने । साहं

मोहं गता केनापि कृपालुना वृष्णिपालेन स्वकुटीरमावेश्य विरोपित व्रणाऽभवम् । ततः स्वस्थीभूय भूयः क्ष्माभर्तुरन्तिकमुपतिष्ठासुरसहायतया दुहितुरनभिज्ञाततया च व्याकुलीभवामि" इत्यभिदधाना "एकाकिन्यपि स्वामिनं गमिष्यामि" इति सा तदैव निरगात् ।

हिन्दी अर्थ—उस शव की ओर आकृष्ट होने वाले क्रुद्ध बाघ के प्राणों को धनुष से मुक्त (किसी व्याध आदि के द्वारा बाण ने अपहरण कर लिया । चञ्चल बालों वाले उस बालक को कोई शबर कहीं पर ले गया । दूसरे बालक को मेरी पुत्री लेकर के न जाने कहाँ चली गयी है । इस प्रकार मोहभाव को प्राप्त मुझे कोई कृपाशील ग्वाला अपनी कुटीर में लाया और घावों की पूर्ति की । वहाँ से स्वस्थ होकर के मैं अपने महाराज के समीप जाना चाहती हूँ किन्तु असहाय होने से तथा पुत्री का पता न होने से दुःखी हूँ इस प्रकार कहती हुई मैं अकेली होती हुई भी स्वामी के पास जाऊँगी यह कह कर चली गयी ।

संस्कृतव्याख्या :—तच्छवाकर्षिणः = तस्य कपिलाधेनोः शवस्य कुणपस्य मृतशरीरस्य वा आकर्षी लोलुपःतस्य, अमर्षिणः=क्रुद्धस्य, व्याघ्रस्य =शार्दूलस्य, प्राणान्=असून्, बाणः=शरः, बाणासनयन्त्रमुक्तः=कार्मुकक्षिप्तः, अपाहरत्=जहार,लोलालकः=लोलाः चञ्चलाः अलकाः चूर्णकुन्तलाः यस्य सः बालकोऽपि=शिशुरपि, शबरैः=वन्यजातिविशेषः, आदाय= गृहीत्वा, कुत्रचित्=कुत्रापि, उपानीयत्=उपनीतः,कुमारम्=राजकुमारं, अपरम्=द्वितीयम्, उद्वहन्ती=धारयन्ती, मद्दुहिता=मत्पुत्री, कुत्र= क्व, गता=याता, न=नहि, जाने=अवगच्छामि, साहम्, मोहंगता= मोहभावं प्राप्ता, केनापि=अज्ञातेन, कृपालुना=दयालुना वृष्णिपालेन= मेषपालेन, स्वकुटीरम्=स्वनिवासस्थानम्, आवेश्य=अनीय, विरोपितव्रणा =विरोपिताः पूर्तिगताः व्रणाः क्षतयः यस्याः सा, अभवम्=अभूवम्, ततः =तस्मात् स्थानात्, स्वस्थीभूयः स्वस्थचित्तीभूय, भूयः=पुनः क्ष्माभर्तुः= भूपतेः=अन्तिकम्=समीपम्, उपतिष्ठासुः—उपस्थातुमिच्छु, असहायतया =साहाय्यरहितया, दुहितुः=कन्यायाः, अनभिज्ञाततया=अपरिचिततया, व्याकुलीभवामिव्याकुलतां अनुभवामि, इति=इत्थम् । अभिदधाना= कथयन्ती, एकाकिनी=अद्वितीया सती, स्वामिनम्=महाराजम्, गमिष्यामि यास्यामि, सा=वनिता, तदैव=तस्मिन्काले एव, निरगात्=निर्ययौ ।

टिप्पणी :—आ + विश धातु से णिच् प्रत्यय के पश्चात् ल्यप् प्रत्यय का रूप है।

अहमपि भवन्मित्रस्य विदेहनाथस्य विपन्निमित्तं विषादमनुभवंस्तदन्वयाङ्कुरं कुमारमन्विष्यंस्तदैकं चण्डिकामन्दिरं सुन्दरं प्रागाम। तत्र संततमेवंविधविजयसिद्धये कुमारं देवतोपहारं करिष्यन्तः किराताः 'महीरुहशाखावलम्बितमेनमसिलतया वा, सैकततले खनननिक्षिप्तचरणं लक्षीकृत्य शितशरनिकरेण वा, अनेकचरणैः पलायमानं कुक्कुरबालकैर्वा दंशयित्वा संहनिष्यामः" इति भाषमाणा मया समभ्यभाष्यन्त—'ननु किरातोत्तमाः, घोरप्रचारे कान्तारे स्खलितपथः स्थविरभूसुरोऽहं मम पुत्रकं क्वचिच्छायायां निक्षिप्य मार्गान्वेषणाय किञ्चिदन्तरमगच्छम्।

हिन्दी अर्थ—मैं भी आपके मित्र विदेहराज की आपत्ति पर विषाद अनुभव करता हुआ उनके वंश के अंकुर स्वरूप राजकुमार को खोजता हुआ एक सुन्दर चण्डिका के मन्दिर में पहुंचा। वहाँ पर (अर्थात् उस मन्दिर में) इस प्रकार विजय की सिद्धि के लिए राजकुमार को देवबलि चढ़ाने की इच्छा से किरात कह रहे थे कि इसे पेड़ की शाखा में लटका कर तलवार से मार दो या वालू में इसके पैर गाड़ कर फिर तीक्ष्ण शरसमूह से लक्ष्य बनाओ या द्रुतगामी कुत्तों के पिल्लों से कटवाओ इत्यादि प्रकार से कहने वाले किरातों से मैंने कहा—हे किरातप्रवरो ! इस भयंकर जंगल में मैं मार्ग भूलने वाला एक वृद्ध ब्राह्मण हूँ। मैं अपने एक पुत्र को वृक्ष की छाया में रखकर मार्ग ढूढ़ने को कुछ दूर चला गया।

संस्कृतव्याख्या :—अहमपि=तापसोऽपि, भवन्मित्रस्य=भवतः तव मित्रं सुहृद् तस्य, विदेहनाथस्य = मिथिलेश्वरः विपन्निमित्तम्=विपद् आपद् निमित्तं कारणं यस्य तं, विषादम्=खेदम्, अनुभवन्=अनुभवं कुर्वन्, तदन्वयांकुरम्=तस्य अन्वयः वंशः तस्य अंकुरः प्ररोहः तम्, कुमारम्=राजपुत्रम्, अन्विष्यन् = अन्वेषणं कुर्वन्, चाण्डिकामन्दिरम् =कालीमन्दिरम्, सुन्दरम्=मनोहरं, प्रागाम=अगच्छम्, तत्र=मन्दिरे सन्ततम्=निरन्तरम्, एवंविधविजय सिद्धये=एवं विधः एतादृशः विजयः जयः तस्य सिद्धिः प्राप्तिः तस्यै, कुमारम्=राजसूनुम्, देवतोपहारम्=

देवतायै देवाय उपहारः वलिः तम, करिष्यन्तः = करिष्यमाणाः, किराताः = भिल्लाः, महीरुह शाखावलम्बितम् = महीरुहः वृक्षः तस्य शाखायां प्रकाण्डे अवलम्बितं निबद्धं, एनम् = कुमारम्, असिलतया = खड्गलतया, वा = अथवा, सैकततले = वालुकामयप्रदेशे, खननिक्षिप्तचरणम् = खनने गर्ते निक्षिप्तौ प्रक्षिप्तौ चरणौ = पादौ यस्यतम् लक्षीकृत्य = उद्दिश्य, शितशरनिकरेण = शिताः तीक्ष्णाश्च ये शराः वाणाश्च तेषां निकरेण समूहेन, अनेकचरणैः = अनेक पादैः, पलायमानम् = धावन्तम्, कुक्कुरवालकैः = शुनां शिशुभिः, 'पिल्ला' इति भाषायाम् ? दंशयित्वा = दंशनंकारयित्वा, संहनिष्यामः = हननं करिष्यामः, इति = इत्थं, भाषमाणाः = कथयन्तः । समभ्यमाष्यन्त = कथिताः, किरातोत्तमाः = किरातप्रवराः, घोरप्रचारे = घोरः भयंकरः प्रचारः सञ्चारः यस्मिन् तस्मिन्, कान्तारे = कानने, स्खलितपथः = स्खलितः भ्रष्टः पन्था मार्गः यस्य सः, स्थविर भूसुरः = स्थविरश्च वृद्धश्चासो भूसुरः ब्राह्मणः, मम = अस्माकम्, पुत्रकम् = आत्मजम, क्वचित् = कुत्रचित्, छायायाम = वृक्षच्छायायाम, निक्षिप्य = संस्थाप्य, मार्गान्वेषणाय = मार्गस्य पथः अन्वेषणं गवेषणं तस्मै, किञ्चिदन्तरम = किञ्चिद्दूरम्, अगच्छम् = अव्रजम् ।

टिप्पणी :—'स्खलितपथः' यहाँ पर 'ऋक्' पूरब्धूः पथामानक्षे, इस सूत्र से पथिन् का पथ आदेश हो जाता है ।

स कुत्र गतः, केन वा गृहीतः, परीक्ष्यापि न वीक्ष्यते, तन्मुखावलोकनेन विनानेकान्यहान्यतीतानि । किं करोमि, क्व यामि, भवद्भिः किमदर्शि इति । 'द्विजोत्तम् कश्चिदत्र तिष्ठति । किमेष तव नन्दनः सत्यमेवं । तदेनं गृहाण' इत्युक्त्वा दैवानुकूल्येन मह्यं तं व्यतरन् । तेभ्यो दत्ताशीरहं बालकमङ्गीकृत्य शिशिरोदकादिनोपचारेणास्वास्य निःशङ्कं भवदङ्कं समानीतवानस्मि । एनमायुष्मन्तं पितृरूपो भवानभिरक्षतात् इति । राजा सुहृदापन्निमित्तं शोकं तन्नन्दन विलोकनसुखेन किञ्चिदधरीकृत्य तमुपहारवर्मनाम्नाहूयराजवाहनमिव पुपोष ।

हिन्दी अर्थ—(ज्ञानेपर) वह कहाँ चला गया, किसने उसे पकड़ लिया, खोजने पर भी उसे नहीं पाया, उसके मुख को देखे विना कई दिन व्यतीत हो गये । क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या आप लोगों ने तो उसे नहीं

देखा ? (वे बोले) हे ब्राह्मण, एक बालक यहाँ पर है। क्या यह यथार्थतः आपका ही पुत्र है ? इसे आप लें, यह कह कर उन्होंने भाग्य के अनुकूल होने के कारण मुझे दे दिया। उनको आशीर्वाद देकर मैं बालक को लेकर, शीतल जल आदि से उपचार के द्वारा स्वस्थ करके निःशंक होकर आपकी गोद में लाया हूँ। इस आयुष्मान पुत्र की आप पिता के रूप में रक्षा करें। (यह सुनकर) राजहंस ने मित्र के विपत्ति जनित दुःख को उसके पुत्र को देखने के सुख से कुछ हलका करके और उसका नाम उपहारवर्मा रखकर राजवाहन के समान पालन करने लगे।

संस्कृतव्याख्याः—सः=बालकः, कुत्र=क्व, गतः=यातः, केन=केन पुरुषेण, वा=अथवा, गृहीतः=धृतः, परीक्ष्यापि=निरीक्ष्यापि, न=नहि, वीक्ष्यते=दृश्यते, तन्मुखावलोकनेन=तस्य बालकस्य मुखं आननं तस्य अवलोकनेन दर्शनेन, विना=ऋते, अनेकानि=बहूनि, अहानि=दिनानि, अतीतानि=व्यतीतानि, किंकरोमि=किंकार्यं करोमि, क्व=कुत्र, यामि=गच्छामि, भवद्भि=युष्माभिः, अदर्शि=दृष्टः, द्विजोत्तम=द्विजप्रवर, कश्चित्=अज्ञातः, अत्र=अस्मिन् स्थाने, तिष्ठति=अस्तीतिभावः, किमेषः=पुरोवर्तमानः, तव=भवतः, नन्दनः=पुत्रः, सत्यमेव=अवितथमेव, तदेनम्=पुत्रम्, गृहाण=स्वीकुरु, इत्युक्त्वा=इत्थं कथयित्वा, दैवानुकूल्येन=दैवस्य भाग्यस्य अदृष्टस्य वा आनुकूल्येन अनुग्रहेण, मह्यम=ब्राह्मणाय, व्यतरन्=दत्तवन्तः। तेभ्यः=किरातेभ्यः, दत्ताशीः=दत्ता प्रदत्ता आशिषः आशीर्वादाः येन सः, बालकम्=पुत्रम्, अङ्गीकृत्य=स्वीकृत्य, शिशिरोदकादिना=शिशिरं शीतञ्च तदुदक जलं च तदादि यस्मिन् तेन, उपचारेण=चिकित्सया, आश्वास्य=स्वस्थं विधाय, निःशङ्कम्=निर्विशङ्कम्, भवदङ्कम्=भवतः तव अङ्कं क्रोडम्, समानीतवान्=आनीतवान्, एनम्=बालकम्, आयुष्मन्तम्=चिरंजीविनं, पितृरूपः=जनक तुल्यः, भवान्=त्वम्. अभिरक्षतात्=रक्षतु। राजा=नृपः, सुहृदापन्निमित्तम्=सुहृदः मित्रस्य आपद् विपद् निमित्तं कारणं यस्यतम्, शोकम्=दुःखम् तन्नन्दनविलोकनसुखेन=तस्य मित्र नन्दनः तन्नन्दनः तस्य यत् विलोकनं दर्शनं तस्मात् यत्सुखं आनन्दः तेन, किञ्चिद्=स्वल्पम्, अधरीकृत्य=लघूकृत्य, उपहारवर्मनाम्ना=तदभिधानेन, आहूय=आकर्ण्य राजवाहनमिव=स्वपुत्रमिव, पुपोष=वृद्धिं निनाय।

टिप्पणी—'मुखावलोकनेन विना' पृथक् विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्, इस सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई है। 'अदर्शि' 'दृशिर' प्रेक्षणे धातु से कर्म में लुङ् लकार हुआ है। 'अभिरक्षतात्' अभि + रक्ष धातु से 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्' इस सूत्र से विकल्प से तातङ् प्रत्यय हो जाता है।

अपहारवर्मोत्पत्तिकथा—

जनपतिरेकस्मिन् पुण्यदिवसे तीर्थस्नानाय पक्वणनिकटमार्गेण गच्छन्नबलया कयाचिदुपलालितमनुपमशरीरं कुमारं कञ्चिदवलोक्य कुतूहलाकुलस्तामपृच्छत्—"भामिनि ! रुचिरमूर्तिः सराजगुणसंपूर्तिसादर्भको भवदन्वयसंभवो न भवति। कस्य नयनानन्दनः, निमित्तेन केन भवदधीनो जातः, कथ्यतां याथातथ्येन त्वया' इति। प्रणतया तया शबर्या सलीलमलापि—'राजन् ! आत्मपल्ली समीपे पदव्यां वर्तमानस्य शक्रसमानस्य, मिथिलेश्वरस्य सर्वस्वमपहरति शबरसैन्ये मद्दयितेनापहृत्य कुमार एष मह्यमर्पितो व्यवर्धत इति। तदवधार्य कार्यज्ञो राजा मुनिकथितं द्वितीयं राजकुमारमेव निश्चित्य सामदानाभ्यां तामनुनीयापहारवर्मेत्याख्याय देव्यै 'वर्धय' इति समर्पितवान्।

हिन्दी अर्थ—एकबार राजा ने किसी पुण्य दिन पर तीर्थस्नान के लिए शबर बस्ती के निकट से गुजरते हुए किसी औरत के द्वारा लालित तथा अद्वितीय शरीर वाले कुमार को देखकर कुतूहल से युक्त होते हुए पूछा "हे भामिनि ! सुन्दर मूर्तिवाला तथा राजचिन्हों से भूषित यह बालक आपके वंश का नहीं हो सकता। यह किसके नेत्रों का आनन्द देने वाला है और किस कारण से तुम्हें मिला, इस वृतान्त को यथार्थ रूप से कहो'।

उस शबरी ने प्रणाम करके कहा हे राजन् ! अपनी बस्ती के निकट मार्ग से जाते हुए इन्द्र के समान मिथिलाधीश्वर का सर्वस्व-शबर सेना ने अपहरण कर लिया। उस समय मेरे प्रियतम ने इस कुमार का अपहरण करके मुझे अर्पित कर दिया और मैंने इसे बढ़ाया। इस वृतान्त को सुन

कर कार्यज्ञाता राजा ने मुनि द्वारा बताये हुए द्वितीय राजकुमार का निश्चय करके साम तथा दान नीति के द्वारा उस भीलिनी को समझाकर उस बालक का नाम अपहारवर्मा रखकर रानी को पालन करने के लिए दे दिया।

संस्कृतव्याख्या:—जनपतिः=नरपतिः, एकस्मिन्=कस्मिश्चित्, पुण्यदिवसे = पुण्य दिने, तीर्थस्नानाय = तीर्थाभिषेकाय, पक्वणनिकट मार्गेण=पक्वणः शबरवसतिः तस्य निकटमार्गेण समीपपथा, गच्छन्= व्रजन्, अबलया=स्त्रिया, उपलालितम्=स्नेहेनधृतम्, अनुपमशरीरम्= अनुपमं अद्वितीयं शरीरं कायः यस्य तम्, कुमारम्=राजपुत्रम्- अवलोक्य =दृष्ट्वा, कुतूहलाकुलः=कुतुकाकुलः, ताम्=शबरीम्, अपृच्छत्= पृष्टवान्, भामिनि=कोपने, रुचिरमूर्तिः=रुचिरा रमणीया मूर्तिः शरीरम् यस्य सः, सराजगुणसंपूर्तिः=राज्ञः गुणाः तेषां संपूर्तिः तत्सहितः राज-लक्षणोपेत इत्यर्थः, असौ=पुरो वर्तमानः, अर्भकः=बालकः, भवदन्वय सम्भवः=भवतः तव अन्वये वंशे सम्भवः उत्पत्तिः यस्य सः, न भवति=न सम्भवति, कस्य, नयनानन्दनः=नयनाभिरामः, केननिमित्तेन=केन-कारणेन, भवदधीनः=भवदायत्तः, जातः=भूतः, कथ्यताम्=उच्यताम्, याथातथ्येन=यथार्थरूपेण, त्वया=भवता। प्रणतया=प्रकर्षेण नता तया कृतनमस्कारयेति भावः, शबर्या = किरात्या, सलीलम्=सविलासम्, अलापि=अवाचि, राजन्=नृप, आत्मपल्लीसमीपे=आत्मनः स्वस्य पल्ली घोषः वसतिर्वा तस्याः समीपे निकटे, पदव्याम्=मार्गे, वर्तमानस्य =स्थितस्य, शक्रसमानस्य=इन्द्रतुल्यस्य, मिथिलेश्वरस्य=मिथिलाधि-पस्य, सर्वस्वम्=सर्वद्रव्यम्, अपहरति=अपहरणं कुर्वति सति, शबरसैन्य =किरातबले, मद्दयितेन=मत्वल्लभेन, अपहृत्य=गृहीत्वा, एषः=अयम्, कुमारः = राजसूनुः, मह्यं, अर्पितः=प्रदत्तः, व्यवर्धत=वृद्धिप्राप्तः। तद् अवधार्य=विमृश्य, सुचिन्त्यवा, कार्यज्ञः=कार्यवित्, राजा=नृपः, मुनिकथितम्=तापसोक्तम्, द्वितीयं, राजकुमारम्=राजपुत्रम्, एव, निश्चित्य=सुविचार्य, सामदानाभ्याम्=साम च सान्त्वनं च, दानञ्च प्रदा-नञ्च ताभ्याम्, अनुनीय=संतोष्य, अपहारवर्मेति, आख्याय=नामकृत्वा, देव्यै=राज्यै, वर्धय=पालयेति भावः, समर्पितवान्=दत्तवान्।